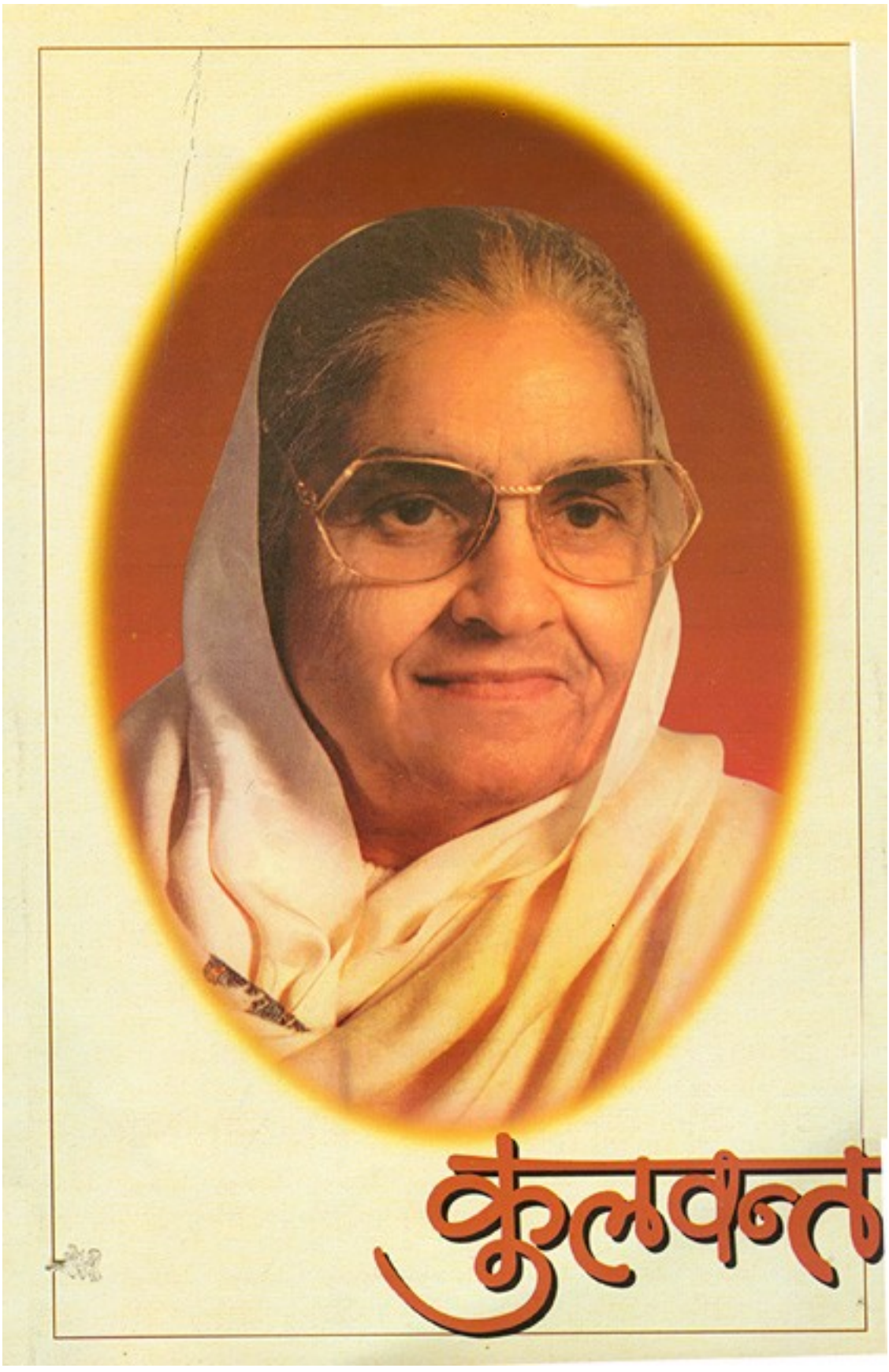
कुलवन्त

कुलवन्त

‘सत्यार्थी’ – ‘उपाशक’

सम्पादन : सुलेख ‘साथी’

© सर्वाधिकार सुरक्षित

AP-095

प्रथम संस्करण	: नवम्बर 1999	5,000 प्रतियां
अब तक	:	39,000 प्रतियां
7वाँ संस्करण	: सितम्बर 2009	2,000 प्रतियां

असवरण : दीपक बग्गा – रणबीर

प्रकाशकः
सन्त निरंकारी मण्डल
सन्त निरंकारी कालोनी, दिल्ली – 110009

अक्षर आयोजनः
बी. एन. 'चेतन'
सन्त निरंकारी कालोनी, दिल्ली – 110009

मुद्रकः हरदेव प्रिन्टर्स
सन्त निरंकारी कालोनी, दिल्ली – 110009

दो शब्द

सद्गुरु के प्रति समर्पण–भाव प्रत्येक भक्त के जीवन का आधार होता है, श्रंगार होता है। परन्तु यदि भक्त सद्गुरु की पुत्रवधु, या पत्नी, या फिर माता हो तो उसके विश्वास, श्रद्धा–भक्ति, प्रीत–नम्रता तथा सेवा का रूप ही कुछ और हो जाता है। उसकी जटिलता का अनुमान इस बात से लग सकता है कि एक ओर तो होता है गुरु–परिवार, जिसमें घर–गृहस्थी की सभी ज़िम्मेदारियां वैसे ही निभानी पड़ती हैं जैसे किसी भी अन्य गृहणी को, और दूसरी ओर होती है साध संगत, जिसका प्रत्येक सदस्य उसी ममता तथा स्नेह की अपेक्षा करता है जो एक बच्चा अपनी माँ से।

निरंकारी जगत् में ऐसा उदाहरण पेश करती हैं निरंकारी राजमाता कुलवन्त कौर जी। आप को ब्रह्मज्ञान की बख्शिश तो आठ वर्ष की आयु में ही हो गई थी, परन्तु गुरु–परिवार में प्रवेश मिला अप्रैल 1947 में, जब आपका विवाह हुआ तत्कालीन निरंकारी बाबा अवतार सिंह जी के सुपुत्र बाबा गुरबचन सिंह जी के साथ, जिन्होंने 1962 में स्वयं सद्गुरु के रूप में संत निरंकारी मिशन की बागडोर संभाली। इस प्रकार तब से लेकर आज तक निरंकारी परिवार ने आप के अनेक रूप देखे हैं।

निरंकारी जगत का सौभाग्य है कि हमारे दरमियान जे. आर. डी. 'सत्यार्थी' जी जो सद्गुरु बाबा जी के निजी सेवक ही नहीं बल्कि प्रकाशन विभाग के इन्चार्ज भी हैं तथा एच. एस. 'उपाशक' जी जो दूर देशों में रहकर मिशन की दिन–रात सेवा करते हैं जैसे पुरातन विद्वान, विचारक महात्मा विद्यमान हैं, जिन्होंने बाबा अवतार सिंह जी के समय से लेकर आज तक सद्गुरु–परिवार को बहुत ही निकट से देखा हैए जिसमें माता जी का जीवन भी सम्मिलित है। पूज्य 'सत्यार्थी' जी बाबा गुरबचन सिंह जी के निजी सचिव रहे हैं। उन्होंने राजमाता जी के जीवन–चरित्र के अलावा उनसे वार्तालाप के आधार पर अनेक जीवनोपयोगी बातों का संग्रह किया था। इस बीच 'उपाशक' जी को भी राजमाता जी की दूर देशों की कल्याण–यात्राओं में सन् 1967 से लेकर आज तक साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ, जिसका उन्होंने भरपूर लाभ उठाया और उनकी प्रत्येक विचार को लिखित रूप प्रदान किया।

प्रस्तुत पुस्तक 'कुलवन्त' इन दोनों महापुरुषों की देन है, जो निरंकारी पाठकों को लम्बी प्रतीक्षा के बाद मिल रही है। यूं तो राजमाता जी के जीवन तथा विचारों का उल्लेख निरंकारी साहित्य में स्थान–स्थान पर आता रहा है, परन्तु यह पहला अवसर है जब निरंकारी राजमाता जी पर अलग से पुस्तक लिखी गई है। आशा ही नहीं, पूर्ण

विश्वास है कि राजमाता जी के जीवन से न केवल निरंकारी–नारी ही बल्कि संसार की प्रत्येक गृहणी लाभ उठा सकेगी, जबकि उनकी गुरु–भक्ति तो प्रत्येक भक्त का मार्ग दर्शन करेगी।

इस पुस्तक के सम्पादन का कार्य 'सन्त निरंकारी' पंजाबी के सह–संपादक श्री सुलेख 'साथी' जी को सौंपा गया, जिसे उन्होंने बहुत ही कुशलता से निभाने का प्रयास किया है।

सद्गुरु बाबा हरदेव सिंह जी महाराज के चरणों में अरदास है कि पूज्य 'सत्यार्थी' जी, पूज्य 'उपाशक' जी तथा श्री सुलेख 'साथी' जी को अपना पावन पवित्र आशीर्वाद दें, बल बख्शें ताकि निरंकारी जगत की, विशेषतया निरंकारी पाठकों की और भी सेवा कर सकें, निरंकारी साहित्य को और भी समृद्ध बना सकें।

दास,
कृपा सागर
प्रकाशन विभाग
संत निरंकारी मण्डल

दिल्ली, 20 नवम्बर, 1999

कुलवन्त

निरंकारी राजमाता जी को मातृ–स्नेह तथा गुरु–भक्ति का मूर्त रूप कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। वास्तव में समस्त निरंकारी जगत् माता जी के इस रूप से भली–भांति परिचित है। दास का विशेष सौभाग्य रहा कि सद्गुरु बाबा गुरबचन सिंह जी के निजी सेवक के तौर पर राजमाता जी के जीवन को भी निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ। जब भी आप किसी महापुरूष से बात करते, किसी बहन को गृहस्थ जीवन की कोई बात समझाते अथवा संगत को सम्बोधित करते, दास सोचता था कि आपके पावन मुखारविन्द से प्राप्त हो रहे इन मोतियों को सम्भाल कर रखा जाए ताकि आने वाली पीढ़ियां भी इस अमूल्य सम्पदा से लाभान्वित हो सकें।

जब तक बाबा गुरबचन सिंह जी रहे, दास अपनी व्यस्तता के कारण इतना समय न निकाल पाया कि पूज्य राजमाताजी के विभिन्न विचारों को एक क्रमबद्ध रूप दे सके। परन्तु सन् 1982 में तो दास ने मन बना ही लिया कि अब इस कार्य में और विलम्ब न किया जाए। अतः, राजमाता जी से निवेदन किया कि जब भी उन्हें सुविधा हो, दास को कुछ समय वार्तालाप के लिये दे दिया करें ताकि दास इस रूप में भी निरंकारी जगत् की कुछ सेवा कर पाये। माँ तो दया की मूर्ति होती है। कहने लगीं, 'शास्त्री जी, देख लो, यदि आपका ऐसा ही ध्यान है तो आ जाया करो, जो कुछ पूछोगे, मैं बता दूंगी। और अगले ही दिन से शुरु हो गयी लेखन की प्रक्रिया।

निरंकारी राजमाता का नाम 'कुलवन्त' है। जनवरी 1931 को माता सोमावन्ती जी की कोख से कुलवन्त कौर का जन्म हुआ। माता सोमावन्ती से भक्तिभाव और अपने पिता मन्ना सिंह जी से मर्यादा–भाव आपको सहज में ही प्राप्त हुये थे। कुलवन्त कौर का जन्म जिला कैमलपुर (पाकिस्तान) में हुआ लेकिन लालन–पालन कोयटा (पाकिस्तान) में हुआ, जहाँ आपके पिता कारोबार करते थे।

पूज्य मन्ना सिंह जी एवं पूज्य सोमावन्ती जी दोनों नियमित रूप से गुरुद्वारे जाते थे और पवित्र बाणी के कीर्तन का श्रवण और मनन करते थे। इस प्रकार पारिवारिक संस्कारों ने आपके कोमल मन में अपनी जगह बनानी शुरू कर दी। श्रद्धा के अंकुर प्रस्फुटित होने लगे। अलाही बाणी के प्रति असीम श्रद्धा धीरे–धीरे जिज्ञासा का रूप धारण करने लगी। श्रद्धा की सजीव मूर्ति निरंकारी राजमाता कुलवन्त कौर ने अपने बाल्यकाल की श्रद्धा भावना और उससे उत्पन्न जिज्ञासा का ज़िक्र करते हुये कहा –

''मैं निरंकार का लाख–लाख शुक्र करती हूँ कि मुझे निरंकार ने ऐसे माता–पिता के घ ार जन्म दिया, जो निरंकार की हस्ती में विश्वास रखने वाले थे। मेरे माता–पिता बड़ी श्रद्धा से गुरुद्वारे जाकर मर्यादानुसार 'बाणी' का कीर्तन सुनते थे। मैं भी निरंकार की कृपा से 'बाणी' के शब्द याद करके फिर उन्हें संगतों को सुनाकर उनके आशीर्वाद प्राप्त करती थी।''

यह कहते हुये आप कुछ देर के लिये किसी सोच में खो गईं। मौन को भंग करते हुये दास ने निवेदन किया, ''मान लीजिये आप को माता–पिता की कृपा से ऐसा सुअवसर न मिला होता तो क्या आपके हृदय में जिज्ञासा के भाव जन्म न लेते? क्या आप समझती हैं कि जीवन की ऊंचाइयों को छूने के लिये ऐसा वातावरण मिलना आवश्यक है, जैसा आपको मिला था?''

इस पर बड़े ही गम्भीर स्वर में उत्तर देते हुये आपने फरमायाः

''मेरे विचार में तो ऐसा वातावरण मिलना बहुत ज़रूरी है। मुझे याद है कि मैं अपने माता–पिता की सिखलाई के अनुसार बहुत सवेरे गुरुद्वारे पहुंच जाती थी। गुरुद्वारे जाकर पूरी लगन से वहाँ के फर्शों की सफाई करती थी और लंगर में सब्जियां छीलने, काटने या रोटियां पकाने की सेवा करके मेरे मन में खास तरह की खुशी का अनुभव होता था।''

थोड़ा रूककर आपने फिर कहना शुरु किया, ''आज मैं सोचती हूँ कि अगर मेरे जीवन में यह समय न आया होता और मैंने बाणी पर सोच–विचार न किया होता तो इस निरंकारी मिशन के अनुयाइयों के चरण छूने, एक दूसरे को भोग लगाने या मिलकर एक साथ खाना खाने जैसी क्रियाओं को देखकर नफरत खा गई होती और बाबा अवतार सिंह जी से सच का ज्ञान प्राप्त करने से वंचित रह गई होती।''

पूज्य निरंकारी राजमाता कुलवन्त कौर जी से जब यह पूछा गया कि अगर ये काम अर्थात् गुरुद्वारे जाना, वहाँ जाकर सेवा करना और 'बाणी' का शब्द कीर्तन सुनना–सुनाना ही जीवन की खुशहाली का साधन है तो फिर जिज्ञासु इन्हीं क्रियाओं को यथा–शक्ति अपने जीवन के अन्तिम काल तक श्रद्धापूर्वक करता जाये तो उसका लोक सुखी और परलोक सुहेला सहज में हो जायेगा। फिर मुक्त अवस्था के लिये किसी और उपाय को अपनाने की क्या ज़रूरत है? आपने बड़े ही सरल स्वभाव में कहना शुरू किया –

''मैंने केवल यह बताया है कि इन कर्मों से मेरे मन में खुशी का अनुभव होता था, परन्तु ज्यों–ज्यों मैं अलाही 'बाणी' को पढ़ती थी, सुनती थी तो मेरे मन में उन रब्बी महापुरुषों के दर्शन करने की इच्छा भी प्रबल हो उठती थी, जिन्होंने इस बाणी में अपने जीवन के तजुर्बों का वर्णन किया है। मैं दिल ही दिल में सोचा करती थी कि कितना अच्छा होता यदि मेरा जन्म उस काल में हुआ होता जब ये रब्बी जोतें (विभूतियां) दुनिया में अपना प्रकाश फैला रही थीं।''

राजमाता जी ने अपनी बात स्पष्ट करते हुये आगे फरमाया –

'मेरा यह सब कुछ कहने का भाव यह है कि इन कर्मों से मेरे मन में जिज्ञासा ने जन्म लिया। मैं अपने कदम आगे बढ़ाने की प्रेरणा पा सकी। मैं मानती हूँ कि दुनिया में करोड़ों लोग ऐसे हैं जो इन्हीं में खो कर रह जाते हैं। कई बार ये क्रियायें अहंकार का रूप भी धारण कर लेती हैं। आदमी समझने लगता है कि मैं सुबह उठता हूँ, मैं स्नान करता हूँ, मैं गुरुद्वारे या मन्दिर में जाता हूँ, मैं धर्म–ग्रन्थों का पाठ करता हूँ तो मुझसे बड़ा धर्मी और कौन हो सकता है। इसका नतीजा यह निकलता है कि उसके जीवन की तरक्की, उसके जीवन का विकास वहीं रूक जाता है।''

राजमाता जी कुछ क्षणों के लिये एक बार फिर मौन हो गईं। मैं चुप–चाप माँ के चेहरे की ओर देख रहा था। मुझे प्रतीत हो रहा था कि मैंने बीच में टोककर गलती की है। माँ को अपने बाल्यकाल की गाथा बिना किसी रोक–टोक कहने देनी चाहिये थी। इतने में माताजी ने पुनः कहना शुरू किया–

'निरंकार की रहमतों का, जो निरंकार ने मुझ पर की हैं, वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है। जहाँ दातार ने मुझे श्रद्धालु माता–पिता दिये वहाँ कुछ ऐसे रिश्तेदार भी दिये जो सच से वाकिफ ही नहीं, सच के रंग में रंगे हुये थे। उनमें से जिन्होंने मुझे सबसे ज्यादा सच की प्राप्ति की प्रेरणा दी, वह थे पूज्य बाऊ महादेव सिंह जी। चूंकि वह खुद बाणी के रसिया थे, इसलिये मुझे भी गौर से विचार कर बाणी पढ़ने को कहते। मुझे कल की तरह याद है कि अलाही बाणी का यह शब्द –

गुर बिनु गिआनु न होवई ना सुखु वसै मनि आई।
नानक नाम विहूणे मनमुखी जासनि जनमु गवाई।।

पढ़कर पूछा करते थे कि इसका अर्थ क्या है? क्या तुमने ऐसा काम कर लिया है? मैं उस वक्त हार मानना नहीं चाहती थी। मैं झट कहती थी कि इसका अर्थ तो बाऊ जी आपको भी नहीं आता। यह अलाही बाणी है। इसकी समझ किसी विरले को ही आती है। पूज्य बाऊ जी मेरी बात सुनकर हंस देते थे। कभी मेरी बातों का बुरा नहीं मानते थे। मुझे बाद में समझ आया कि सन्त–महात्मा बड़े विशाल दिल के होते हैं, वे किसी की अच्छी–बुरी बात का अच्छा या बुरा नहीं मानते। अपनी धुन के पक्के होते हैं। प्यार और नम्रता से दूसरे का मन जीत लेते हैं।

पूज्य बाऊ जी के साथ–साथ मेरी बड़ी बहन और मेरी माता जी मुझसे और मेरे पिताजी से सदा बाबा अवतार सिंह जी के पास चलकर अंग–संग परमात्मा को जान लेने की बात कहती रहती थीं। मेरे पिताजी एक श्रद्धालु सिख थे। वह यह मानते थे कि हमें 'बाणी' को ही मानना है, इससे बढ़कर ज्ञान प्राप्ति का और कोई साधन नहीं। जब उन्हें बाऊजी और मेरे माता जी ने बताया कि यह बाणी का ही हुक्म है कि हम गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते –

जैसे–

भाई रे गुर बिनु गिआनु न होई।
पूछहू ब्रहमे नारदै बेद बिआसै कोई।।

या

पूरे गुर का सुनि उपदेसु।
पारब्रहमु निकटि करि पेखु।।

मुझे अब भी याद है मेरे पिताजी के यह शब्द –

बाणी गुरु गुरु है बाणी विचि बाणी अंमृतु सारे।

पढ़कर बाऊजी से पूछा था कि मैं मानता हूँ कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता पर जब हमें बाणी का हुक्म है कि हम बाणी को ही गुरु मानें तो हमें ओर किसी गुरु की शरण लेने की क्या ज़रूरत है? इस पर बाऊजी ने मेरे पिताजी को बड़े अदब से निवेदन किया, भाई साहब मन्ना सिंह जी, आप इस शब्द को पूरा पढ़ें। पूरा शब्द पढ़ने से पता चल जायेगा कि बाणी का असल में क्या हुक्म है।'

इससे पहले कि मेरे पिताजी अभी पूरा शब्द पढ़ते, मैं अपने बाल स्वभाव के वश बीच में बोल उठी, 'बाऊजी, मैं पूरा शब्द पढ़ती हूँ।' और मैंने 'हाँ' या 'ना' की इन्तज़ार किये बिना पूरा शब्द पढ़ना शुरु कर दिया –

बाणी गुरु गुरु है बाणी विचि बाणी अंमृतु सारे।।
गुरु बाणी कहै सेवकु जनु मानै परतखि गुरु निसतारे।।

बाऊजी ने मेरे पिताजी को सम्बोधित करते हुये कहा, 'भाई साहब जी, आप खुद इस शब्द के अर्थ पर विचार करें तो आपको यह समझने में देरी नहीं लगेगी कि प्रतख गुरु (प्रत्यक्ष गुरु) के बिना हमारा पार उतारा होने वाला नहीं।'

मेरे पिताजी ने धीमी–सी आवाज़ में कहा, 'चलो, पहले आप कुलवन्त को अपने बाबाजी के पास ले जाओ। अगर तुम्हारे बाबाजी का ज्ञान सच्चा होगा तो मैं भी आपसे ज्ञान ले लूंगा।'

पिताजी की आज्ञा पाकर मैं जब पूज्य शहनशाह जी (बाबा अवतार सिंह जी) के चरण–कमलों में पहुँची तो उन्होंने बड़े ही सरल ढंग से मुझे निरंकार का ज्ञान प्रदान किया।

दास ने बड़ी उत्सुकता से राजमाता जी को बीच में ही टोकते हुये पूछा, ''माताजी आपको याद है कि आप को पूज्य बाबा अवतार सिंह जी ने किस प्रकार ज्ञान दिया था?'' माता जी हंसते हुये कहने लगीं, ''ज्ञान समझ को कहते हैं, किसी जन्तर–मन्तर या तन्तर को नहीं कहते। शहनशाह जी ने मुझे ज्ञान प्रदान करते हुये फरमाया था, 'बच्चू, एक माया है जिसे प्रकृति कहते हैं और एक इसका बनाने वाला निरंकार परमात्मा है। दोनों एक दूसरे में ओत–प्रोत हैं। बेटा, यह माया तो आती जाती है, तब्दील होती रहती है। यह डांवा–डोल है। लेकिन इसको बनाने वाला परमात्मा तीन काल में एक जैसा रहता है। कहा भी है –

आदि सचु जुगादि सचु।।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।

इस सच में तो कभी कोई तबदीली नहीं आनी चाहिये।' इतना कहकर शहनशाह जी ने फिर फरमाना शुरु कर किया –

'तीन ताकतें ऊपर हैं – सूरज–चांद–सितारे। तीन शक्तियां नीचे हैं – धरती–जल–अग्नि। इसी तरह धरती और आसमान के बीच में भी तीन ताकतें मौजूद हैं। वायु–जीव–आकाश। बच्चू! ये सभी ताकतें किसी बड़ी ताकत की गोद में पड़ी हैं।' दो हथेलियों के इशारे से शहनशाह जी ने समझाया कि 'ये सब ताकतें इन दोनों तलियों की तरह नाशवान हैं, रूप बदलने वाली हैं। ये ताकतें एक रस रहने वाली नहीं हैं।'

शहनशाह जी ने अपनी ओर मेरा ध्यान खींचते हुये कहा – 'ज़रा ध्यान से मेरी बातों को सुनो' और साथ ही पूछा कि इन सबके खत्म हो जाने पर जो शेष बच गया है – क्या इसका कोई आकार है, कोई रंग–रूप है, क्या इस शेष का किसी तरह नाश हो सकता है? क्या इसे कोई शस्त्र काट सकता है? क्या इसे अग्नि जला सकती है? क्या यह पानी से गीला हो सकता है? क्या इसको हवा सुखा सकती है? क्या यह आँखों से देखा जा सकता है? क्या यह जुबान से चखा जा सकता है? क्यों बच्चे, बोलो न यह क्या है?

मैंने एकटक तलियों में देखते हुये और दिये गये परमात्मा संबंधी संकेतों से मिलाते हुये एकदम कहा – 'यही निरंकार है। यही अकाल–पुरख है।' और यह कहते हुये मैंने पूज्य शहनशाह जी के चरणों में सिर झुका दिया। मुझे लगा कि अब मैं हूँ और मेरा बनाने वाला मेरे सामने, मेरे पीछे, मेरे दायें, मेरे बायें मौजूद है। मैं अपने राम को पाकर खामोश हो गई। कुछ बोल नहीं सकी। समय गुज़रता गया और सन्त महापुरुषों की संगति से नाम खुमारी अपना रंग दिखाने लगी। मुझे आज यह कहने में संकोच नहीं कि श्रद्धा और जिज्ञासा मैंने अपने पिता से प्राप्त की थी और ज्ञान–प्राप्ति की प्रेरणा मेरे पिता ने मुझसे प्राप्त की थी।''

इतना कहकर राजमाता जी ने दास से कहा, ''आज मैं इससे ज़्यादा और कुछ नहीं कह सकती'', और राजमाता जी उठकर अपने कमरे की ओर चली गईं। मैं अपनी आदत के अनुसार माताजी के वचनों पर विचार करता हुआ पब्लिकेशन रूम में पहुँच गया। दोपहर का एक बजा था। नवम्बर 1982 की पहली तारीख थी। गुरु नानक देव जी का जन्म मनाया जा रहा था। राजमाता जी के मुखारविन्द से निकले वचनों से दास जिस परिणाम पर पहुंचा, वह कुछ इस प्रकार था –

- बच्चों पर माता–पिता के संस्कारों का गहरा प्रभाव होता है।
- श्रद्धा बहुत बड़ी ताकत है, अगर यह किसी सत्य के ज्ञाता का सामीप्य पाकर जिज्ञासा का रूप धारण कर ले तो परम सत्य की प्राप्ति का साधन बन जाती है।
- प्रत्यक्ष गुरु के बिना ज्ञान की उपलब्धि कठिन ही नहीं, असम्भव है।
- ज्ञान की उपलब्धि में छोटी उम्र न रुकावट है और न बड़ी उम्र सहायक। ज्ञाता मिल जाये तो ज्ञान मिल जाता है। उम्र छोटी हो या बड़ी।
- सच्ची लगन वालों के लिये धर्म–कर्म समझे जाने वाले क्रिया–क्लाप ज्ञान–प्राप्ति में सहायक सिद्ध होते हैं जबकि दूसरों के लिये ये विकास मार्ग में अर्थात् सत्य की प्राप्ति में बाधक ही सिद्ध होते हैं।

दास सद्गुरु की असीम कृपा से उसी दिन शाम को राजमाता जी के प्रति अपनी भावना और राजमाता जी की ज्ञान–प्राप्ति की गाथा को लेखनीबद्ध करने में सफल हो गया।

दूसरे दिन अर्थात् 2 नवम्बर को प्रातः 10 बजे मैं फिर माता जी के पास पहुंच गया। माताजी ने दास को देखते ही कहा, ''क्या कल की बातचीत से तुम्हारी तसल्ली नहीं हुई?'' दास ने सिर झुकाते हुये निवेदन किया, ''माताजी! आप रहमत करें, दास आपका टाइम नहीं लेगा। दास जानता है कि आप पर कई तरह की ज़िम्मेदारियों का बोझ है?'' खैर, माता जी कमरे में पड़ी कुर्सी पर बैठ गईं और दास ने माँ के चरणों में बैठते हुये पूछा, ''माताजी, ज्ञान–प्राप्ति के बाद आपने क्या महसूस किया, इसका थोड़ा सा विवरण आपके मुखारविन्द से दास सुनना चाहता है।''

राजमाता जी ने बड़े ही सहज भाव से कहना शुरु किया –

''मैं उस समय कोई बहुत गुणी–ज्ञानी नहीं थी। मैं आठ वर्ष की एक सरल स्वभाव की श्रद्धालु बच्ची थी। गुरु की कृपा से मुझे माया और ब्रह्म का भेद (रहस्य) समझ आ गया था। इसलिये मैं उठते–बैठते गुरु मन्त्र (इक तूही निरंकार, मैं तेरी शरण हूं, मुझे बख्श लो) का जाप करने लगी। मुझे गुरबाणी का यह श्लोक –

सासि सासि सिमरहु गोबिंद।।
मन अंतर की उतरै चिंद।।

इस बात की याद दिलाता रहता था कि उठते–बैठते, सोते–जागते, खाते–पीते हर वक्त निरंकार को दिल में बसाकर रखना चाहिये। मुझे यह बात ठीक तरह से याद है कि सभी महापुरुष (सत्संगी) निरंकार का सुमिरण करते थे। ज़ुबान से भी करते थे और दिल से भी। पूज्य शहनशाह जी (बाबा अवतार सिंह जी) की सिखलाई ही यही थी कि –

हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नाल।।

अभी राजमाता जी शायद इस विषय पर कुछ और कहना चाहते थे, दास ने बीच में ही टोकते हुये निवेदन किया, ''माता जी, पूज्य बाबा अवतार सिंह जी आपको और क्या सिखाया करते थे?'' माता जी ने खुलकर हंसते हुये कहा, ''वह तो हमारे सच्चे माता–पिता थे। जिस प्रकार माता–पिता कदम–कदम पर कुछ न कुछ सिखाते रहते हैं, वह भी हमें समय–समय पर जीवन जीने की ट्रेनिंग देते रहते थे।''

शहनशाह जी खासतौर पर इस बात पर ज़ोर देते थे कि जिस माता–पिता ने हमें शरीर करके जन्म दिया है, उनकी सेवा और सत्कार में कभी कोई लापरवाही नहीं बरतनी चाहिये। माता–पिता के गुण–अवगुण देखे बिना उनकी सेवा करनी चाहिये। माता–पिता की सेवा के बाद जो समय मिले, उसे सन्त महापुरुषों की संगत में और सेवा में गुज़ारना चाहिये, वे हम बच्चों का पास बिठा लेते थे और बड़े प्यार से समझाते थे कि 'अपने छोटे–बड़े बहन–भाइयों से सदा प्यार किया करो। उनको पहले खिलाकर फिर खुद खाया करो। अगर गलती हो जाये तो उसकी झट से मुआफी मांग लिया करो।'' थोड़ा रूककर

''जब हमारे माता–पिता मिलते तो उनसे खूब ज़ोर दे कर कहते, ''तुम्हारे बच्चे ब्रह्मज्ञानी हैं। ये निरंकार की तुम्हारे पास अमानत हैं। इनका लालन–पालन बड़े प्रेम से किया करो। बच्चों के सामने सोच समझकर बोला करो, जो कर्म करो, वह भी गुरमत के अनुसार किया करो, क्योंकि ये बच्चे बड़े सयाने होते हैं। हर बात को बड़े ग़ौर से देखते हैं। अगर माता–पिता घर बैठकर किसी की निन्दा करेंगे तो बच्चे भी इस बुराई से नहीं बच पायेंगे। अगर माता–पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे नेक बनें तो माता–पिता को अपना जीवन पेश करना पड़ेगा। पूज्य शहनशाह जी अक्सर कहा करते थे कि अगर हमारे ब्रह्मज्ञानियों के घर–गृहस्थ में प्यार का राज (राज्य) कायम हो जाये तो संसार को बहुत जल्दी बदला जा सकता है।''

पूज्य राजमाता जी न जाने कब तक बाबा अवतार सिंह जी की सिखलाई का ज़िक्र करते जाते यदि दास उन्हें रोककर उनसे यह न पूछता कि माताजी आपको अपने सद्गुरु की बहु बनने पर किस तरह की अनुभूति हुई? माता जी ने फटाक से उत्तर दिया –

''मैंने उन्हें कभी ससुर नहीं समझा, केवल सद्गुरु के रूप में ही उनकी सेवा की है और उन्होंने भी मुझे कभी नूंह (बहु) नहीं समझा, बल्कि अपनी जायी (जन्मी) बेटी से ज़्यादा प्यार और दुलार दिया। जिसका नतीजा यह निकला कि मैं शिष्या बनकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करती रही और वह पिता बनकर मेरा पालन–पोषण करते रहे।''

इस पर दास ने याचना करते हुये कहा, 'माताजी! क्षमा करना।' दास आपसे एक ऐसा प्रश्न करने जा रहा है, जो एक बेटे को अपनी माँ से नहीं करना चाहिये, लेकिन आप बड़े विशाल दिल की मालिक हैं, इसलिये आप दास की धृष्टता को मुआफ कर देंगी।''

माताजी हंसे और कहने लगे, ''पूछो, जो पूछना है। झिझकने या संकोच करने की कोई ज़रूरत नहीं।''

दास ने नतमस्तक होकर निवेदन किया – ''माता जी! आप की सास माता बुद्धवन्ती थीं। सब बताते हैं कि वह बड़े भोले–भाले स्वभाव की थीं। दास यह पूछना चाहता है कि आपने उनके भोलेपन से प्रभावित होकर उनका आदर–सत्कार किया था या आम बहुओं की तरह उनके भोलेपन का फायदा उठाया था?''

माताजी मुस्कुराते हुये बोले, ''यह तो मेरा सौभाग्य था कि मुझे जगतमाता जी (माता बुद्धवन्ती जी) जैसी सीधी–सादी सास मिली। उन्होंने मुझसे कभी कुछ छिपाकर नहीं रखा। आपको यह बताने की ज़रूरत नहीं कि पूज्य जगतमाता जी मेरी सास ही नहीं थीं, मेरे सद्गुरु की घरवाली (अर्द्धांगिनी) भी थीं। मैंने सदा उनकी पूजा साध–संगत की माता के रूप में ही की और उन्होंने भी मुझे अपनी बेटियों 'नन्द' और 'जीत' जैसा ही प्यार–दुलार दिया। असल में जब एक गुरसिख को यह ज्ञान चक्षु मिल जाते हैं कि साध संगत का बच्चा–बच्चा सद्गुरु का रूप है, तो कोई बड़ा अपने आप को बड़ा नहीं मानता। हर कोई एक दूसरे को सद्गुरु का रूप समझकर एक–दूसरे पर वारे–वारे जाता है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि निरंकार की जोत (ज्योति) का घ ाट–घट में दर्शन करने वालों के हृदय में छोटे–बड़े, अपने–पराये का भाव जन्म ही नहीं

ले सकता। सत्संगी महापुरुषों के घर में कलह का तो सवाल ही नहीं उठता। हर गुरमुख जो सत्संग करता है, साध संगत का प्रेमी है, उसे इस बात का पूरा ज्ञान है कि **अगर मैंने गुरु की आवाज़ को घर-घर पहुँचाना है तो मुझे उसके लिये पहले अपने घर को सुधारना होगा, अपने घर में पहले प्यार और ज्ञान की गंगा बहानी होगी। लोग हमारा करतब (कर्म) देखते हैं, हमारे करतब का ही असर उन पर होता है। बोलों, गीतों या कविताओं द्वारा तो हर कोई बोल लेता है लेकिन बोलना उनका परवान (स्वीकार) है जो अपने कर्म द्वारा बोलते हैं।** यह सिखलाई शहनशाह जी से हमें रोज़ प्राप्त होती थी। इसलिये किसी से ग़लत बरताव करने की बात ही हमारे मन में नहीं आती थी।''

एक क्षण रूककर आपने फरमाया – **'मेरा तो विश्वास है कि अगर आज भी हम अपने सद्गुरु की शिक्षा पर अमल करें, तो हमारे लोक-परलोक दोनों सहज में ही सुखी हो सकते हैं।**

इतना कहते-कहते माताजी कुर्सी से उठे और अपने आराम करने वाले कमरे में चले गये और दास अपनी लेखनी और कागज़ उठाये हुये सीधा अपने घर पहुंचा। राजमाता जी के वचनों का दास पर कुछ ऐसा असर हुआ कि दास ने भी बड़े प्यार से अपने छोटे-से परिवार के साथ मिलकर खाना खाने की कामना की ताकि हम भी एक-दूसरे का प्यार-सत्कार पाकर अपने लौकिक जीवन का आनन्द ले सकें। दास के परिवार के सदस्य बड़े हैरान भी थे और अन्दर अन्दर से शायद खुश भी कि आज दास उनके परिवार का एक अंग बनकर उनका साथ दे रहा था। दास पिछले कई सालों से गृहस्थ आश्रम के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करने में बहुत ज़्यादा ही लापरवाही से काम ले रहा था। दास अपने मन के किसी कोने में ऐसा मानने लगा था कि गुरु-भक्ति के लिये घरेलु कर्त्तव्यों से मुंह मोड़ना आवश्यक है। लेकिन आज ऐसा लगा कि यह दास की अपनी मनमति थी। गुरमत में तो परिवार की सेवा, परिवार का पालन-पोषण गुरसिख के जीवन का मूलभूत कर्त्तव्य है। इससे कोताही, गुरमत से विमुख होने का दूसरा नाम है।

तीन और चार नवम्बर को माताजी से भेंट करने का कोई अवसर न मिला। पांच तारीख को माताजी से खुला टाईम मिल गया। उस दिन माताजी से कई तरह की जानकारी प्राप्त हुई।

दास ने माताजी से एक बार फिर अपनी धृष्टता की क्षमा–याचना करते हुये पूछा, ‘‘माता जी, बाकी घर के मैम्बरों से तो गुरु का रूप समझकर प्यार–सत्कार पा लिया जा सकता है या उन्हें प्यार–सत्कार दे दिया जा सकता है और शायद ऐसा करना कोई मुश्किल काम न हो, लेकिन पति–पत्नी एक–दूसरे से जो घुले–मिले होते हैं, एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं, वे एक–दूसरे को गुरु का रूप कैसे समझ सकते हैं, अपने निजी अनुभव के आधार पर इसका कुछ ज़िक्र कीजिये।’’

माताजी ने बड़े ही सरल स्वभाव में कहना शुरु किया, ‘‘पति कैसे पत्नी को गुरु का रूप समझता है, इसके सम्बन्ध में तो मैं कुछ ज्यादा नहीं कह सकती लेकिन एक पत्नी बड़ी आसानी से पति को गुरु का रूप मानकर उसका आदर–सत्कार कर सकती है, यह मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर बताती हूं। आप तो जानते ही हैं कि हमारे देश में नारी–जाति ने सदा ही पति को परमात्मा का दर्जा दिया है। ब्रह्मज्ञानी पति तो और भी ऊंचे पद का मालिक होता है। उसके साथ पत्नी को दोहरा रिश्ता होता है। एक तो वह उसका पति परमात्मा होता है और दूसरे ज्ञानवान गुरसिख होने के नाते उसके इष्टदेव गुरु का स्वरूप होता है। यदि ऐसा दोहरा रिश्ता होते हुये भी कोई पत्नी पति के सेवा–सत्कार को महत्ता नहीं देती है, तो समझ लेना चाहिये कि उस पत्नी के हृदय में गुरु के ज्ञान का वास नहीं हुआ। वह कोरी वाह–वाह की पुजारिन है। हुजूर शहनशाह जी की यह बात मुझे कभी नहीं भूलती कि **‘जो स्त्री अपने ज्ञानवान पति के आदर सत्कार को छोड़कर किसी मनोकामना की पूर्ति के लिये किसी अन्य महापुरुष या देवी–देवता के चक्कर काटती है, वह बहुत बड़ी गलती का शिकार है। घर बैठे ही वह मन की हर कामना को पूरा कर सकती है, यदि वह अपने ज्ञानवान पति की सेवा–सत्कार कर उसको प्रसन्न कर लेती है।’** मैं तो सच कहती हूँ कि मैंने तो अपनी हर कामना अपने पति की सेवा करके पूर्ण की है। जब बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज अभी गुरु गद्दी पर विराजमान नहीं हुये थे, तब भी उनकी सेवा से मैंने जीवन के हर सुख को प्राप्त किया। उनकी आज्ञा मानकर मेरा घ ार–गृहस्थ सदा धरती पर स्वर्ग का नमूना बना रहा। शास्त्री जी, मेरा तो विश्वास है कि यदि पति भी अपनी पत्नी को गुरसिख वाला प्यार–सत्कार दे तो उसके जीवन में भी बहार आ सकती है।’’

थोड़ा रूककर राजमाता जी ने कहा, ‘‘मुझे तो भगवान राम और माता सीता का जीवन सदा प्रेरणा देता है। मैं तो दिल से मानती हूँ कि हर गृहस्थी को इस अलौकिक जोड़ी से पति–पत्नी के जीवन की जाच (कला) सीखनी चाहिये। सीता माता ने अपने पति के लिये सब कुछ त्याग दिया और अपने पति के साथ वनवास के

जीवन को हंसते–हंसते अपनाया और भगवान राम ने अपनी पत्नी की प्राप्ति के लिये मौत तक से टक्कर ली। जब पति–पत्नी दोनों एक–दूसरे पर इस तरह न्यौछावर हो जायें तो दुनिया में अपना घर जन्नत से बढ़कर होगा।'' राजमाता जी ने एक लम्बी सांस ली और फिर कहना शुरु किया –

''पति पत्नी की आपस में कभी नहीं बिगड़ सकती यदि पति–पत्नी थोड़ा सावधानी से काम लें। उन्हें याद रखना चाहिये कि पत्नी सदा यह चाहती है कि वह अपने घ ार–बार का त्याग करके आई है। उसके माता–पिता की सेवा तो उसका पति नहीं कर सकता लेकिन वह उनके लिये शुभ कामना तो कर सकता है। उनकी देन की कभी–न–कभी तारीफ तो कर ही सकता है। वह पत्नी अपने पति के माता–पिता से भी उम्मीद करती हैं कि वे भी उसके माता–पिता, बहन–भाइयों का ज़िक्र जरा आदर–सत्कार से करें। और यह काम कोई मुश्किल नहीं। लेकिन कई बार पति के माता–पिता, बहन–भाई उसके परिवार की तारीफ की बजाय, उसके मुंह पर ही उनके गुण दोष छांटने लगते हैं, जिसका कभी–कभी इतना भयानक नतीजा निकलता है जिसे देखकर रूह कांप उठती है। **गुरसिख तो वैसे ही हर एक के गुणों की ओर ही देखता है। निन्दा उसके स्वभाव में ही नहीं होती। यदि गुरमत के इस छोटे से असूल को याद रखें तो हमारे घरेलु कलह का बहुत हद तक अन्त हो सकता है। सच्चे गुरसिख के जीवन में ऐसी गलती प्रवेश कर ही नहीं सकती।**

पत्नी भी इसी तरह यदि अपने पति के माता–पिता और उसके बहन–भाइयों के साथ सद्व्यवहार करे, जैसा कि एक गुरसिख के प्रति करना चाहिये, तो मैं निरंकार का आसरा लेकर कहती हूं कि हमारे घर में किसी प्रकार का कोई कलह–क्लेश जन्म नहीं ले सकता।

गुरमत का बुनियादी सिद्धान्त है –

निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहबा मणीआ मंतु।
ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु।

यह याद रहे तो हम इसी संसार में स्वर्ग का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।'' राजमाता जी चुपके से उठे और गुरुदेव हरदेव जी के कमरे की ओर बढ़ गए और दास पहले की तरह ही राजमाता जी के वचनों पर विचार करता हुआ अपने लिखने वाले कमरे में

पहुंच गया। अभी दोपहर के 12 बजे थे। खाना खाने का समय नहीं हुआ था। दास कुर्सी पर बैठा–बैठा इस सोच में खो गया कि –

यदि हम गुरसिख गुरु के आदेशों और उपदेशों को जीवन का अभिन्न अंग बना लें तो हमारी पारिवारिक, सामाजिक यहां तक कि आर्थिक उलझनों का भी हल सहज में ही हो सकता है। दास को ऐसा आभास हुआ कि अच्छा नागरिक होने के लिये हमें और कुछ विशेष उपाय अपनाने की ज़रूरत नहीं, केवल सद्गुरु द्वारा सिखाये गये नम्रता और सत्कार–भाव को जीवन में अपनाने की ज़रूरत है।

छः नवम्बर को जब दास राजमाता जी के पास पहुंचा तो वह दो परिवारों, जिनके मन में किसी गलतफहमी के कारण मन–मुटाव का जन्म हो गया था, उन्हें समझा–बुझा कर वापिस भेज रहे थे। दास चुपचाप तब तक खड़ा रहा जब तक राजमाता जी अपने इस काम से पूरी तरह फुरसत नहीं पा गये।

राजमाता जी जैसे ही कुर्सी पर विराजमान हुये, दास ने निवेदन किया, ''माताजी, अभी दिल में तो यह आया कि आपसे पूछूं कि गुरसिखों में एक–दूसरे से क्यों टकराव हो जाता है? लेकिन यह प्रश्न कभी फिर अवसर मिलने पर पूछूंगा। आज दास आपकी कहानी, आपकी जुबानी सुनना चाहता है। रहमत करो, कुछ ऐसी घटनायें सुनायें जिनसे मानव–मन को निरंकार के इंतजाम और निज़ाम की पूर्णता पर हृदय से विश्वास आ जाये। राजमाता जी अभी कुछ कहना आरम्भ करते कि दास खुद ही बोल उठा – ''माता जी, दास 1965 से आपकी सेवा में आ गया था, इसलिये इससे पहले की कहानी सुनना चाहता है।''

माताजी मुस्कुराते हुये कहने लगे – ''मैं वैसे तो अपनी कहानी बता चुकी हूं, आपके दोबारा पूछने पर मुझे याद आया कि अभी मैं चार–पांच वर्ष की ही थी तो कोयटा (पाकिस्तान) में एक भयानक भूचाल आया। कोयटा नगर के सभी मकान देखते–देखते ज़मीन पर आ गिरे परन्तु जब तक मैं, मेरे माता–पिता और मेरी बहन अपने कमरे से बाहर नहीं आ गये, कमरा ज्यों का त्यों खड़ा रहा, और जैसे ही हम लोग बाहर खुले आंगन में पहुंचे, कमरा धड़ाम से नीचे आ गिरा। आज मैं सोचती हूं कि **दातार निरंकार ने जिनकी रक्षा करनी होती है, उन्हें अपना हाथ देकर रख लेता है, और जिनकी जीवन लीला का समय खत्म हो गया होता है उनकी आत्मा को शरीर से जुदा कर देता है।''**

माता जी ने अकस्मात् गहरी सांस लेते हुये कहना शुरु किया – ''1947 का साल एक बड़ा ही भयानक साल था। आदमी, आदमी को हिंसक जानवरों की तरह मौत के घट उतार रहा था। अल्लाह, राम या वाहेगुरु का नाम लेकर इन्सान, इन्सान का खून पीने में अपने धर्म की जीत समझ रहा था। धर्म जो ज़िन्दगी देता है, उसी धर्म के नाम पर एक–दूसरे की ज़िन्दगी को मौत की गोद में सुलाया जा रहा था। लेकिन 'जा को राखे साइयां, मार सके न कोये' की कहावत के अनुसार अकालपुरख ने हमारी रक्षा की। मेरे पिता जी, जो हमसे बिछुड़ गये थे, वह भी निरंकार की रहमत से हमसे आ मिले और हम लोग दातार की रहमत से शहनशाह जी के पास पहुँच गये। बिगड़े हुये हालात को देखते हुये पूज्य शहनशाह जी ने दातार निरंकार के हुक्म से मेरी शादी 22 अप्रैल 1947 को बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज से सम्पन्न कर दी। सगाई पहले ही हो चुकी थी। मुझे याद है, ऐसे हालात में भी लगभग तीन–चार सौ महापुरुषों ने अपनी भरपूर आशीर्वादें प्रदान कीं। मैं समझती हूँ कि उन महापुरुषों और मेरे सद्गुरु बाबा अवतार सिंह जी की कृपा का ही फल है कि मैं अपने आने वाले समय में साध संगत, सद्गुरु और परिवार के सभी मैम्बरों का सेवा–सत्कार कर सकी। मुझे यह कहते हुये बड़ा फ़ख्र होता है कि अकालपुरख की मुझ पर विशेष ही रहमत है कि मैं सदा अपने फ़र्ज़ों को निभाने में काफी हद तक सफल रही हूँ।

पूज्य राजमाता जी अचानक गहरी सोच में डूब गईं प्रतीत हुईं। दास ने साहस करके माताजी से पूछा, ''अचानक आप किस ख़्याल में खो गई हैं?'' राजमाता जी ने भरे स्वर में कहा –

''मेरी आँखों के सामने अचानक हिन्दुस्तान पाकिस्तान के बंटवारे के भयानक दृश्य घ ूमने लगे थे। मैं इस सोच में डूब गई थी कि अगर हमें सद्गुरु से एक पिता की जानकारी प्राप्त न हुई होती तो हम भी उसी जुनून की लहर में बहकर न जाने क्या कुछ कर गुज़रे होते।''

थोड़ी देर रूककर माताजी ने फिर कहना शुरु किया, ''आखिर हमें रावलपिण्डी शहर छोड़कर 'वाह' कैम्प में शरण लेनी पड़ी।'' वाह कैम्प का नाम आते ही माताजी को शायद बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज की याद हो आई। आप का गला भर्रा गया। आपने बड़े भाव भरे स्वर में कहा, ''बाबा जी, जिन्हें हम लोग उन दिनों 'सेठजी' के नाम से पुकारते थे, ने शरणार्थी बहन–भाइयों की सेवा करके सिद्ध कर दिया कि जिनके हृदय में निरंकार का ज्ञान बस जाता है, उनका जीवन सबकी सेवा और

सुख–सुविधा में अर्पण हो जाता है। वे अपने–पराये की भावना से बहुत ऊँचे उठ जाते हैं।

'वाह' कैम्प में ठहरे अन्य निरंकारी महात्मा भी अपने जीवन से सिद्ध कर रहे थे कि दातार उनके अंग–संग है। दातार के हुक्म के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। उनका विश्वास देखकर 'वाह' कैम्प में रहने वाले दुखी लोग भी सांत्वना की सांस लेते थे। आखिर एक दिन एक गाड़ी (ट्रेन) द्वारा हम सबको बाबाजी (बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज) ने जालन्धर के लिये रवाना कर दिया और खुद सबका सामान लाने का विश्वास दिलाकर वहीं रूक गये।''

एक बार एक क्षण के लिये माताजी फिर रूके और फिर कहना शुरु किया, ''उस समय मेरी शादी को हुये केवल तीन–साढ़े तीन महीने ही हुये थे। एक बार दिल में थोड़ी कमज़ोरी ज़रूर आई कि मेरे पति को भी हमारे साथ ही हिन्दुस्तान के लिये चल पड़ना चाहिये लेकिन बाबाजी की दृढ़ता और विश्वास को देखकर यह बात जुबान पर लाने की हिम्मत नहीं हुई। मुझे मानने में कोई इन्कार नहीं कि मेरी आंखों से बहे आंसुओं ने यह सब कुछ अनजाने में ही कह दिया। मुझे बड़ा फ़खर है कि मेरे पति एक सच्चे और परोपकारी सन्त की तरह अपने इरादे पर दृढ़ रहे और एक दिन मेरे पिताजी सहित सभी सन्त–महात्माओं का सामान लेकर जालन्धर पहुंच गये। उनकी दृढ़ता और विश्वास ने मेरे कभी–कभी डगमगा जाने वाले यकीन को सदा–सदा के लिये पक्का कर दिया। मुझे विश्वास हो गया कि दुनिया में जो कुछ हो रहा है, दातार के हुक्म में हो रहा है। **गुरसिख सच्चे मन से दातार–निरंकार से जो भी अरदास करता है, यदि उनसे दूसरे की हानि न होती हो तो वह अरदास अवश्य पूरी हो जाती है।''**

यह कहते–कहते पूज्य राजमाता जी अपनी जगह से उठ खड़े हुये, ''इसके बाद की कहानी सुनाने की ज़रूरत नहीं क्योंकि इसके बाद एक गृहस्थी को जैसे मेहनत–मजदूरी करके अपने जीवन को गुज़ारना चाहिये और एक गुरसिख को जैसे सेवा–सिमरन और सत्संग करना चाहिये, मैंने भी केवल वही किया और मेरे जीवन में और कोई ऐसी विशेषता नहीं थी, जिसका ज़िक्र मैं आपसे करूं।''

दास ने नम्रता से निवेदन किया, ''माताजी, अभी दास को आपसे बहुत कुछ पूछना है। लेकिन आज दास समझता है कि अभी लिखने के लिये काफी सामग्री मिल गई है।''

दास ने माताजी के चरण–स्पर्श करते हुये एक बार फिर निवेदन किया, ‘‘दो–चार दिन आप का समय और लूंगा, फिर आप जैसा आदेश देंगीं, वैसा ही करूंगा।’’ पूज्य राजमाता जी अपने स्वभाव के अनुसार चुपचाप, कुछ ‘‘हाँ’’ या ‘‘ना’’ कहे बिना अपने काम में लग गईं और दास उसी तरह फिर अपने लिखने वाले कमरे में पहुंच कर एक गहरी सोच में डूब गया। दास की आंखों के सामने भी हिन्दुस्तान के बंटवारे के भयानक दृश्य एक–एक करके घूमने लगे।

दास की भावुकता ने कई बार मुझ पर वार किया कि आज की दुनिया को धर्म के उस घिनौने और विकृत रूप से अवगत कराया जाये, जिससे तथाकथित धर्म के ठेकेदारों की काली करतूतों का सही चित्र सामने आ सके लेकिन अंग–संग निरंकार ने शायद ऐसा करने का साहस प्रदान नहीं किया। दास को मन की गहराइयों से ऐसी आवाज आई कि गन्दगी को कुरेदने से सिवाए बदबू के और कुछ पल्ले पड़ने वाला नहीं। दास को अर्न्तात्मा का यही आदेश हुआ कि तुम उसी गाथा के शब्द चित्र खींचो जिससे मानवता की सुगन्ध सारे वातावरण को सुगन्धित करती हो। तुम प्रकाश फैलाओ, अन्धेरा खुद–ब–खुद लुप्त हो जायेगा। अन्धेरे के भयानक परिणामों का ज़िक्र करने से अन्धेरे का अन्त होने वाला नहीं। इस ज़िक्र से तो अन्धेरे के और घनीभूत होकर सामने आने की ज्यादा सम्भावना है।

पूज्य राजमाता जी के चरण कमलों में जब दास उसी शाम को फिर जा पहुंचा तो वह कहने लगीं, ‘‘शास्त्री जी, मुझे जितना याद था, मैंने आपको सुबह ही सुना दिया, अब मेरे पास और सुनाने के लिये कुछ नहीं।’’ दास ने सिर झुकाकर निवेदन किया – ‘‘माताजी, अब आपसे कहानी सुनाने के लिये नहीं कह रहा। दास तो यह जानना चाहता है कि आपको बेटी का, बहन का, बहु का, भाभी का व पत्नी का और सबसे ज्यादा मां का अर्थात् अनेकों रोल निभाने पड़े हैं। यही नहीं, इनके साथ–साथ एक गुरसिख का रोल भी अदा करना पड़ा है। आप रहमत करें और बतायें कि आपने ये सारे रोल एक साथ एक ही वक्त में किस तरह निभाये? दास तो एक ही वक्त में यह सब कुछ कर पाना असम्भव समझता है।’’

यह सुनकर पूज्य राजमाता जी ठहाका मारकर हँस पड़े। दास कुछ हैरान होकर पूछने लगा, ‘‘क्या दास से प्रश्न पूछने में कोई गलती हो गई है?’’

‘‘नहीं, ऐसी बात नहीं।’’ पूज्य राजमाता जी ने मुस्कुराते हुये फरमाया और अपनी बात जारी रखते हुये कहना शुरु किया –

''आप अपनी तरफ झात मारें (झांक कर देखें) तो आपको खुद ही पता चल जायेगा कि ऐसा करना कोई मुश्किल काम नहीं। आप संगत में भी जाते हैं, रसाले (पत्रिका) के लिये लेख भी लिखते हैं। आपने अपने बच्चों को साथ–साथ पढ़ाया भी है, उनकी शादी–ब्याह भी किये हैं। जैसे आप इन सभी फर्ज़ों को भाग–दौड़कर निभा रहे हैं, इसी तरह मैं तो यही समझती हूँ कि यदि हम सच्चे गुरसिख बन जायें, गुरु के हुक्म के अनुसार सब में दातार सद्गुरु के दर्शन करें तो किसी तरह का फर्ज़ निभाने में कोई मुश्किल नहीं आती।''

दास को अचानक न जाने कैसे यह बात सूझी कि ''माता जी, लोग तो पहले ही हमें कहते हैं कि तुम पत्नी और माता में कोई फर्क नहीं देखते। आपका क्या विचार है ?''

माताजी हंसते–हंसते कहने लगे, ''उन्हें एक बात समझाने की ज़रूरत है कि पैन्ट और कोट का गर्म कपड़ा एक ही मिल का, एक ही रेट पर लिया जाता है। उनके रेट में कोई अन्तर नहीं होता। लेकिन कोई मूर्खता से यह समझ बैठे कि इनका मूल्य एक जैसा है, इसलिये इसका इस्तेमाल भी एक तरह का हो सकता है तो वह पैन्ट की जगह कोट और कोट की जगह पैन्ट पहनकर खुद ही मज़ाक का कारण बन जाता है। हमें सद्गुरु ने सोझी दी है कि हर घट में एक ही नूर का वास है। हर घट का एक जैसा सत्कार होना चाहिये लेकिन व्यवहार करते समय हम माता को माता और पत्नी को पत्नी का स्थान देकर उनका सत्कार करते हैं।''

दास ने झट से एक और प्रश्न कर दिया – ''माताजी, जब परमात्मा घट–घट में विराजमान है तो हमें इसे जानने या प्राप्त करने के लिये किसी गुरु रूपी माध्यम की क्या जरूरत है ?''

माताजी थोड़ा गम्भीर होकर कहने लगीं, ''आप इस तरह अगर सवाल में से सवाल निकालते जायेंगे तो इन सवालों का सिलसिला कभी खत्म होने वाला नहीं। रही बात इस सवाल की, तो आपको इस बात का कभी तजुर्बा अवश्य हुआ होगा कि **हवा बड़े ज़ोर से चल रही है, आपकी या किसी और की साइकिल की हवा किसी कारण निकल जाये तो वह हवा जो वहाँ व्यापक है, वहाँ मौजूद है, उसके काम नहीं आती, उसे पम्प के माध्यम का सहारा लेना पड़ता है। ठीक इसी तरह इस सर्वव्यापक शक्ति को जीवन का अंग बनाने के लिये भी किसी सत्य के जानकार को माध्यम बनाना पड़ता**

है। लकड़ी में व्यापक अग्नि को प्रज्जवलित करने के लिये भी कोई न कोई माध्यम अपनाना पड़ता है।''

इतना कहकर माताजी बाहर आईं संगतों को दर्शन देने के लिये चली गईं और दास स्वभाव वश सोच में डूबा अपने घर की ओर लम्बे डग बढ़ाने लगा। दास चाय का प्याला भी पी रहा था और मन ही मन में यह प्रतिज्ञा भी कर रहा था कि मुझे दातार–प्रभु ने जो रोल सौंपे हैं, मैं अवश्य उन्हें सुचारू रूप से निभाने का भरसक प्रयत्न करूंगा। अभी दास सोच ही रहा था कि मेरे चेहरे के हाव–भाव देख कर दास का बेटा झट से बोल उठा – आप हर समय क्या सोचते रहते हैं? दातार पर अपनी बागडोर छोड़ दीजिये, दातार सब ठीक करेगा।

दास हैरान था कि जिस बेटे को मैं अभी गुरमत के क्षेत्र में नादान ही समझता था, वह मुझे गुरमत का मूल–भूत सिद्धान्त समझा रहा था। वह कहता जा रहा था कि दातार जिससे जो काम लेना चाहता है, ले लेता है। हमें कर्त्ता–भाव से ऊपर उठकर सहज भाव में काम करते जाना चाहिये। दातार हमें हर क्षेत्र में सफलता प्रदान करेगा।

मगर दास ने अपने व्यक्तित्व का प्रभाव जताते हुये कहा, ''बेटा, कर्म तो हमें करना है, कर्म करने के लिये सभी सन्त महात्मा हमें कहते हैं। कर्म से मुख मोड़ लेंगे तो सृष्टि का संचालन कैसे होगा?'' झट से बड़े नम्र भाव में उसने कहा, ''पापाजी, आपने तो **'गुरुदेव हरदेव'** में पूज्य बाबाजी के विचारों का संकलन किया है। आपको याद होगा कि हुजूर ने वहाँ फरमाया है कि हमें कर्म अवश्य करना है लेकिन हममें कर्त्ता भाव का जन्म नहीं होना चाहिये।''

दास का सिर श्रद्धा भाव से उस नौजवान के सामने झुक गया। मैं तो यही समझता था कि हमारे नौजवानों के पास इतनी फुरसत ही कहाँ कि वे आध्यात्मिक साहित्य को पढ़ पायें लेकिन उसने साबित कर दिया कि दातार किसी घट में भी बैठकर अपनी बात कहलवा सकता है। इसके लिये किसी परिपक्व अथवा अपरिपक्व अवस्था की कोई शर्त नहीं।

रविवार सात नवम्बर से लेकर बुधवार तक माताजी से भेंटवार्ता का कोई अवसर नहीं मिला लेकिन इन दिनों में कुछ भाई–बहनों से भेंट हुई जिन्होंने पूज्य राजमाता जी की उस कहानी को सुनाया जब वह अभी 'भाभीजी' के नाम से सबकी सेवा–सुश्रुषा करती

थीं। उन्होंने बताया, 'पूज्य माताजी जब भाभी के रूप में थीं तो उन्होंने पहले पहाड़गंज की तंग गलियों के तंग मकान में किस तरह से आये गये महापुरुषों की सेवा करके उनके आशीर्वाद प्राप्त किये और फिर निरंकारी भवन, निरंकारी कॉलोनी में लगभग 8–10 वर्ष तन–मन–धन से अपने सद्गुरु बाबा अवतार सिंह जी और साध संगत की सेवा की। यह वही समय था जब एकमात्र आप पर आपकी सन्तान के पालन–पोषण की ज़िम्मेदारी थी क्योंकि आपके पति बाबा गुरबचन सिंह जी तो सदा अपने कारोबार में या अपने सद्गुरु की सेवा में तल्लीन रहते थे।' बताने वालों ने बताया, 'भाभी जी, या भरजाई जी सब सेवादारों की सेवा में मग्न रहतीं। उनकी यथाशक्ति धन से भी सहायता करतीं। बीमार सेवादारों को खुद कार चलाकर हस्पताल तक पहुँचाने में आप कभी संकोच नहीं करती थीं। लंगर में जाकर सफाई करना, आटा गूंधना या फुलके पकाना आपके दैनिक जीवन की क्रिया बन चुकी थी। समागम के दिनों में तो, बताने वालों ने बताया, आप बहुत कम अपने आराम का ध्यान करती थीं। पति की सेवा, बच्चों का पालन–पोषण, रिश्तेदारों की यथायोग्य सहायता, सेवा और सत्कार देखकर लोग दांतों तले उंगलियां दबाने लगते थे।

सेवा और सत्कार की सजीव मूर्ति के पास दास वीरवार की सुबह को पहुंच गया। माताजी शायद कुछ कहना चाहती थीं, पर दास ने साहस बटोरते हुये निवेदन किया, ''माताजी, दास तीन दिन से आपसे भेंटवार्ता करने की कोशिश करता रहा पर आप सदा किसी न किसी कार्य में व्यस्त मिलीं, आज दास आपसे कुछ समय देने की भीख मांगता है।''

माताजी मुस्कुराते हुये कहने लगे, ''अच्छा भाई, पूछो जो पूछना है।'' यह कहते हुये माताजी कुर्सी पर टिक कर बैठ गईं और दास भी आलथी–पालथी मारकर बैठ गया। दास ने माता जी को स्पष्ट बता दिया था कि आज दास कुछ ऐसे प्रश्न पूछने जा रहा है, जो हमें अपना विरोधी समझकर हम पर या हमारे मिशन के मानने वालों या चलाने वालों पर आरोप लगते हैं, से सम्बन्धित हैं।

पूज्य राजमाता जी दास की बात बड़े गौर से सुन रहे थे। दास ने पहला प्रश्न यह किया कि ''लोग कहते हैं कि बाबा अवतार सिंह जी अनपढ़ थे। डबल रोटियां बनाने का काम करके अपना पेट पालते थे। दुनियावी तौर पर भी वे कोई ज़्यादा चतुर–चालाक नहीं थे। उन्होंने अपने धर्म की यही दुकान लोगों को बुद्धू बनाकर या कुछ कवि–प्रचारकों को धन–दौलत देकर चमकाई है, यह बात कहां तक सच है?''

माताजी बड़े ही गम्भीर हो गये और कहने लगे, ''आपको यह समझ नहीं आ रही कि वे खुद मान रहे हैं कि बाबा अवतार सिंह जी के पास न दुनियावी विद्या थी और न वे दुनियावी चालाकी ही जानते थे तो वे लोगों को बुद्धू बनाने में सफल कैसे हो गये? रही बात धन-दौलत की तो उन्होंने दिन-रात मेहनत करके जो धन कमाया, वह उनके परिवार के पालन-पोषण के लिये भी काफी नहीं था तो वह दूसरे लोगों को धन-दौलत देकर कैसे अपनी ओर कर सके? सच बात तो यह है कि जो यह आरोप लगाते हैं, वे सब तरह से समर्थ हैं, जो चाहें कर सकते हैं, पैसे की उनके पास कमी नहीं। वे जिसको चाहें खरीद सकते हैं, लेकिन **भक्ति-भाव न पैसे से खरीदा जा सकता है और न ही बेचा जा सकता है।** बाबा अवतार सिंह जी ने मिशन की जो बढ़ोतरी की, उसमें सच्चाई का ही सारा रोल है। जो भी उनके पास आया, जिज्ञासु या विरोधी बनकर, सत्य को पाकर वह सदा के लिये उन्हीं का होकर रह गया।''

''बाबा अवतार सिंह जी अपने आपको नानक या राम कहाते थे, यह बात भी उन लोगों को अच्छी नहीं लगती थी। आप इस बात पर भी थोड़ी रोशनी डालें।'' मैंने पूछ ही लिया।

पूज्य माताजी ने इसका उत्तर एक पंक्ति में दिया, ''आप अपने रसाले में छपे बाबा अवतार सिंह जी के विचार पढ़ेंगे तो इसका जवाब आपको खुद-ब-खुद मिल जायेगा।''

''माताजी, वे लोग यह भी आरोप लगाते हैं कि बाबा अवतार सिंह जी अपनी यश-कीर्ति के लिये गुरबाणी के शब्दों का गलत अर्थ लगाते थे।'' अभी दास बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि माताजी झट से बोल उठीं, ''यह भी आप उनके विचार रसाले में से पढ़ लें। आपको पता लग जायेगा कि उन्होंने अर्थ ठीक किये या अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिये उनका गलत अर्थ किया है।'' थोड़ा रूककर कहने लगे, ''शास्त्री जी, आपको भी तो हमारे बिल्कुल करीब रहते हुये 15-20 वर्ष हो गये हैं, कभी आपने पढ़ा या सुना है कि यहां किसी धर्म-ग्रन्थ का गलत अर्थ लगाकर अपनी उदर-पूर्ति की हो। अब सच तो कहना ही है, वह कइयों को भा जाता (पसन्द आता) है, कइयों को नहीं भाता। मुझे भी आपने सुना है, मैं भी ज़्यादातर गुरबाणी के ही उदाहरण देती हूं। आप खुद उन्हें फिर से टेप रिकार्ड द्वारा सुन लें या जो अंश कहीं छपे हैं, उन्हें पढ़ लें, आपको पता चल जायेगा कि मेरे मन में, मेरे रोम-रोम में बाणी समाई हुई है। मैं तो यह कहते हुये कभी नहीं झिझकती कि अगर बाबा अवतार सिंह जी की बातें गुरबाणी की कसौटी पर पूरी न उतरी होती तो मैं तो मानने से

साफ इन्कार कर देती। लोग मुझे भले ही इस कारण गुस्ताख नूंह (बहु) समझते लेकिन मैं गुरबाणी के विरुद्ध कोई काम करने को तैयार न होती।''

दास ने माता जी का धन्यवाद किया और आशीर्वाद मांगा कि दास अब आपका और अधिक समय न ले। दास के पास आप की बहुत सी विचारें किसी–न–किसी रूप में सुरक्षित हैं, उन्हें विषयानुसार तरतीब देकर लोगों तक आपके विचार पहुँचा दूंगा और 1964 से लेकर 25 अक्टूबर 1982 तक आपके जीवन की जो झांकी अपनी आंखों से देखी है, उसे सद्गुरु के आर्शीवाद से शब्दों का रूप देने का यथा–शक्ति प्रयास करूंगा। यह कहकर दास ने घर जाकर पूज्य राजमाता जी के आदेशानुसार युगपुरुष बाबा अवतार सिंह जी के प्रवचनों को पढ़ना शुरु किया। जब दास ने अगस्त 1951 का अंक उठाया तो पढ़ने को मिला –

''आज संसार के लोग मेरे बारे में यह शिकायत करते हैं कि मैं गुरु नानक बनता हूं। मैं तो कहता हूं कि मैं गुरु नानक के सेवकों का भी सेवक हूँ। जिन्होंने गुरु नानक जी की शिक्षा को जीवन में अपना लिया है, मैं ऐसे सन्त–महापुरुषों के चरणों का अभिलाषी हूं। मैं तो सारे जगत का दास हूँ।''

इन पंक्तियों को पढ़कर दास दिल ही दिल में इस नतीजे पर पहुँचा कि ऐसी भ्रांतियां जान–बूझकर फैलाई गई हैं ताकि लोग सत्य को जानकर कहीं उनके चंगुल से आज़ाद न हो जायें।

दास ने जनवरी 1950 से लेकर युगपुरुष बाबा अवतार सिंह जी के प्रवचनों को बड़े गौर से पढ़ा। दास को कहीं भी ऐसा नहीं लगा कि बाबा अवतार सिंह जी ने गुरबाणी के शब्दों के अर्थ को तोड़–मरोड़ कर पेश किया हो। इसके विपरीत यह पढ़ने को अवश्य मिला कि –

''कहना पड़ेगा कि गुरबाणी पढ़ी तो ज़रूर जा रही है, लेकिन उस पर विचार नहीं किया जा रहा। यदि विचार किया जाये तो मेरे ध्यान में कोई विरला ही होगा जो बुरे कर्म करे।''

इन पंक्तियों को पढ़कर मुझे ऐसा लगा जैसे गुरबाणी सब रोगों की दवा है। दास बाबा अवतार सिंह जी के प्रवचन पढ़ता जा रहा था और सोचता जा रहा था कि बाबा अवतार सिंह जी ने जो कुछ कहा, उसका आधार गुरबाणी को ही बनाकर कहा।

गुरबाणी जिस काम को करने के लिये कहती है, बाबा अवतार सिंह जी भी वह काम करने को कहते हैं और जिस काम को करने से गुरबाणी रोकती है उसे बाबा अवतार सिंह जी भी न करने का आदेश देते हैं।

पूज्य राजमाता जी के कथनानुसार अगले दिन जब दास ने माताजी के टेप किये हुये और कुछ पत्र–पत्रिकाओं में छपे हुये प्रवचन सुने और पढ़े तो दास हैरान रह गया कि माताजी ने अपने प्रवचनों में थोड़ी–थोड़ी देर बाद गुरबाणी के ही उद्धारण देकर इन्सान को जीवन के असली मकसद से अवगत कराया। दास यहाँ यह बता देना आवश्यक समझता है कि चूँकि राजमाता जी गुरबाणी के शब्दों का ही अधिकतर प्रयोग करते हैं, इसलिये उन शब्दों में जो विभिन्न संकेत दिये गये होते हैं, उन्हीं की व्याख्या माताजी करते चले जाते हैं, इसलिये उन शब्दों में जो विभिन्न संकेत दिये गये होते हैं, उन्हीं की व्याख्या माताजी करते चले जाते हैं, इसलिये उनके प्रवचन में कई विषयों पर विचार पढ़ने को मिलते हैं। दास ने एक ही विषय के सम्बन्ध में, जो उन्होंने भिन्न–भिन्न समयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें एक विषय के शीर्षक के अर्न्तगत इकट्ठा कर दिया जाता है ताकि पाठक उस विषय–विशेष के बारे में माँ के विचारों से अवगत हो सकें। **'मनुष्य जीवन का मकसद है ईश्वर प्राप्ति'।** इस अमर सत्य की ओर ध्यान दिलाते हुये राजमाता जी फरमाते हैं –

''साध संगत जी, दातार निरंकार ने हमें जो यह इन्सानी चोला बख्शा है, इसी में हम नाम–निरंकार की प्राप्ति कर सकते हैं। इन्सान को दातार ने इतनी सोझी बख्शी है कि वह सच–झूठ का निर्णय कर सकता है। और योनियों में यह शक्ति नहीं। यहाँ अगर सौ, दो सौ पशु–पक्षी इकट्ठे कर लें और उन्हें ज्ञान की बातें सुनाना शुरु कर दें, तो उन्हें इन बातों से कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। ये आप इन्सानों को दातार ने ऐसा दिमाग बख्शा है कि आप अपने भले–बुरे की पहचान कर सकते हैं। इन्सानों को ही यह आवाज़ दी गई है कि–

भई परापति मानुख देहुरीआ।।
गोबिंद मिलन की इह तेरी बरीआ।।
अवरि काज तेंरै कितै न काम।।
मिलु साध संगति भजु केवल नाम।।

ईश्वर प्राप्ति मनुष्य के हिस्से में ही आई है। 'बाणी' में आया है कि मनुष्य–तन सबसे उत्तम तन है। बाकी योनियों वाले तो भोग, भोग रहे हैं। इन्सान को कर्म

करने का अधिकार मिला है। इन्सान चाहे तो अपना काम संवार सकता है, चाहे तो अपने पांव पर कुल्हाड़ा मार सकता है।''

'बाकी योनियां भोग योनियां हैं।' इसका स्पष्टीकरण करते हुये माताजी फरमाते हैं – 'बाणी' में फरमाया गया है कि –

अवर जोनि तेरी पनिहारी।।
इसु धरती महि तेरी सिकदारी।।

पूज्य माताजी ने इस बात की ओर विशेष तौर पर ध्यान दिलाया है कि एक परम् शक्ति है और इस एक शक्ति के अनेक नाम हैं। लोग नाम के जपने को ही ईश्वर–प्राप्ति समझ बैठे हैं, इस मूल से अवगत कराते हुये माताजी फरमाते हैं –

''साध संगत, पहले निरंकार की प्राप्ति करनी है, फिर इसके गुणगान करने हैं। प्राप्ति के बिना नाम रटन से कोई लाभ नहीं प्राप्त हो सकता। भाई गुरदास जी ने इस बात को बड़े विस्तार से समझाया है कि केवल नाम से काम नहीं चलने वाला, वस्तु की, नामी की प्राप्ति ज़रूरी है। हमारा काम वक्खर से चलेगा, केवल अक्खर से नहीं। भाई गुरदास जी फरमाते हैं कि –

जैसे खाण्ड खाण्ड कहे मुख नहीं मीठा होए।
जब लग जीभ स्वाद खाण्ड नहीं खाईयै।।
जैसे रात अन्धेरी में दीपक दीपक कहे।
तिमिर न जाए जब लग न जराईयै।।
जैसे ज्ञान ज्ञान कहै, ज्ञान हूं न होत कछु।
जब लग गुर ज्ञान अन्तर ना पाईयै।।
तैसे गुर ध्यान कहै, गुर ध्यान हूं न पावत।
जब लग गुर दरस जाए न समाईये।।

पूज्य माताजी ने हमारा ध्यान इस ओर भी दिलाते हुये फरमाया कि ''परमात्मा हमारे अंग–संग है। परमात्मा किसी खास ठिकाने या किसी खास जगह पर नहीं रहता। इस अमर पद प्रदान करने वाली शक्ति को भूलकर लोग दुनिया के नाशवान पदार्थों में ही खचित हैं। सन्त–महापुरुषों की बाणियों को पढ़ते हैं लेकिन उन पर विचार नहीं करते।

वे तो फ़रमाते हैं कि –

अमृतु संगि बसतु है तेरै, विखिआ सिउ उरझाइओ।।
जिह घर महि तुधु रहना बसना सो घरु चीति न आइओ।।

माताजी ने अलाही बाणी का सहारा लेते हुए अपनी बात को स्पष्ट किया कि – यह संसार नाशवान है। इस संसार की सब ताकतें तबदीली में हैं। इनमें मन रमाने से इन्सान का मन कभी शान्त नहीं हो सकता। दुनिया की तारीफ़ दुनिया के साथ ही खत्म हो जाती है। परमात्मा स्वयं अमर है, इसकी कीर्ति करने वाला भी अमर हो जाता है। बाणी में स्पष्ट लिखा है –

दुनीआ न सालाहि जो मरि वंन्नसी।
लोका न सालाहि जो मरि खाकु थीई।।
वाहु मेरे साहिबा वाहु।
गुरमुखि सदा सलाहीऐ सचा वेपरवाहु।।

माताजी ने **मानव–मन की कामना** की ओर ध्यान दिलाते हुये कहा – ‘‘साध संगत, हर आदमी चाहता है कि उसके मन को शान्ति प्राप्त हो, मन की भटकन दूर हो, वह माया–ममता के जाल से बच निकले, लोभ–मोह उसका पीछा छोड़ दें। लेकिन यह सब कुछ निरंकार के ज्ञान के बिना होने वाला नहीं। जिन्होंने निरंकार के निर्मल ज्ञान को प्राप्त किया है, वे अपनी अवस्था का ब्यान करते हैं –

माई मैं धनु पाइओ हरिनामु।
मनु मेरो धावन ते छूटिओ करि बैठो बिसरामु।।
माइआ ममता तन ते भागी उपजिओ निरमल गिआनु।।
लोभ मोह एह परसि न साकहि गही भगति भगवान।।
जनम जनम का संसा चूका रतनु नामु जब पाइआ।।
तृसना सकल बिनासी मन ते निज सुख माहि समाइआ।।

पूज्य राजमाता जी ने पूरे 17 वर्ष अपने पति सद्गुरु बाबा गुरबचन सिंह ही महाराज का प्रचार यात्राओं में साथ दिया। पहले दो–चार वर्ष आपने अपने विचारों को व्यक्त करने का साधन गीत या भजन आदि को बनाया लेकिन बाद में आपने अपने प्रवचनों

द्वारा ज्ञान की जो गंगा बहाई, उसे किताबों में बांध पाना बड़ा कठिन है। दिन में दो–दो, तीन–तीन बार भी आपको प्रवचन देने पड़े। बहनों के सत्संगों में जो आपने अलग से प्रवचन दिये, उनका ब्यौरा लिखित रूप में अभी हमारे पास नहीं। अगर उनका ब्यौरा भी बहनों द्वारा मिल जाता है तो कहना होगा कि उन्हें हम आने वाले युग की धरोहर ही मान सकते हैं। इस समय उन्हें प्रस्तुत करने का सामर्थ्य हमारे पास नहीं। खैर, अभी **'ईश्वर प्राप्ति'** के बारे में जो विचार पूज्य माताजी ने किये, उनका कुछ भाग यहां दिया जा रहा है। माताजी ने एक जगह फरमाया कि –

''आज के लोग, हमारे आज के धर्म के आगू (नेतृत्व करने वाले) ईश्वर की प्राप्ति के लिये लम्बे–लम्बे कोर्स बताते हैं। वे तो यहां तक कहते हैं कि ईश्वर प्राप्त हो ही नहीं सकता। ईश्वर को न कोई जान सका है और न कोई जान सकेगा। लोगों की यह बात सुनकर बड़ी हैरानी होती है क्योंकि एक तरफ तो वे पढ़ते हैं कि –

मिलु जगदीस मिलन की बरीआ।।
चिरंकाल इह देह संजरीआ।।

और फिर ऐसा भी पढ़ते हैं –

ठकुर तुम्ह सरणाई आइआ।।
ऊतरि गइओ मेरे मन का संसा
जब ते दरसनु पाइआ।।

साध संगत, हमने संसार की नकल नहीं करनी। हमने अपने गुरुओं–पीरों के हुक्म की पालना करनी है। उनका हमारे लिये यही आदेश–उपदेश है कि हमने इसी जीवन में दातार निरंकार की लखता करनी है। फिर हम भी भक्त कबीर की तरह कह सकेंगे कि –

अब तउ जाइ चढ़े सिंघासनि मिले है सारिंगपानी।।
राम कबीरा एक भए है कोई न सकै पछानी।।

पूज्य माताजी 'बाणी' के प्रमाण देकर स्पष्ट करते हैं कि निरंकार–प्रभु की प्राप्ति का एकमात्र साधन गुरु है। गुरु के बिना ब्रह्म का ज्ञान होना असम्भव है।

आप फ़रमाती हैं कि –

‘‘लोग अपनी करनी से, अपने साधनों से परमात्मा को जानना चाहते हैं। वे ऐसा सोचते समय भूल जाते हैं कि दुनिया की विद्या भी अपने आप प्राप्त नहीं होती। उसके लिये भी किसी उस्ताद की शरण लेनी पड़ती है। ड्राइवरी ही सीखनी हो तो उसके लिये हमें ड्राइवर की संगत करनी पड़ती है। क, ख ही सीखना हो तो उसके लिये किसी हिन्दी पढ़े–लिखे की मदद लेनी पड़ती है। अपनी मर्ज़ी से किये गये जप–तप, पाठ–पूजा, दान–पुण्य से निरंकार की प्राप्ति होने वाली नहीं। साध संगत, बाणी में आया है –

जाप ताप गिआन सभि धिआन।।
खट सासत्र सिमृति वखिआन।।
जोग अभिआस करम धरम किरिआ।।
सगल तिआगि बन मधे फिरिआ।।
अनिक प्रकार कीए बहु जतना।।
पुन दान होमे बहु रतना।।
सरीरु कटाइ होमै करि राती।।
वरत नेम करै बहु भाती।।
नहीं तुलि राम नाम बीचार।।
नानक गुरमुखि नामु जपीऐ इक बार।।

इसे पढ़कर या सुनकर भी अगर कोई यह समझता है कि गुरु की शरण लिये बिना उसका उतारा हो जायेगा, तो वह एक बहुत बड़ी भूल कर रहा है। कई लोग धर्म शास्त्रों के पाठ मात्र को ही प्रभु–प्राप्ति का साधन मान बैठे हैं। बाणी ने उन्हें भी नहीं बख्शा। वहाँ तो लिखा है – पढ़ना गुड़ना संसार की कार है।

साध संगत, इसी पर बस नहीं की, वहां तो फरमाया है –

पढ़े सुने किआ होई।। जउ सहज न मिलिओ सोई।।

इस तरह भी लिखा है –

पड़ि पड़ि गडी लदी अहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात।।
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास।।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास।।
नानक लेखै इक गल होरु हउमैं झखणा झाख।।

पूज्य माता जी को गुरबाणी काफी कण्ठस्थ है। आप हर बात की पुष्टि गुरबाणी के श्लोकों द्वारा करने की आदी हैं। इसलिये एक जगह वह फरमाती हैं कि हमें याद रखना चाहिये कि अगर हम अपना लोक सुखी और परलोक सुहेला (सुखमय) करना चाहते हैं तो हमें गुरु की कृपा से निरंकार–प्रभु को अंग–संग जानकर इसका सदा, हर घड़ी, हर पल, सिमरन करना होगा। निरंकार को पाये बिना हमारा मन शान्त नहीं हो सकता। हमें अपने हौमे–अहंकार को छोड़कर किसी ऐसे सन्त–महात्मा की शरण लेनी होगी जो 'बाणी' की इस शर्त को पूरा करता हो –

गुरि मिलिऐ हरि मेला होई।।
या
साध कै संगि नहीं कछु घाल।।
दरसनु भेटत होत निहाल।।
या

इस तरह भी लिखा है कि –

सति पुरखु जिनि जानिआ सतिगुरू तिस का नाउ।।
तिस कै संगि सिखु उधरै नानक हरिगुन गाउ।।

साध संगत, 'बाणी' ने तो हमें समझाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी पर हम ही अपनी मनमति के अभिमान में अपने अमोलक जीवन को कौड़ियों के भाव रोल रहे हैं। 'बाणी' का तो फ़रमान है –

पूरे गुर का सुनि उपदेसु।।
पारब्रहमु निकटि करि पेखु।।

सासि सासि सिमरहु गोबिंद।।
मन अंतर की उतरै चिंद।।
आस अनित तिआगहु तरंग।।
संत जना की धूरि मन मंग।।
आपु छोड़ि बेनती करहुं।।
साध संगि अगनि सागरु तरहु।।
हरि धन भरि लेहु भंडार।।
नानक गुर पूरे नमसकार।।

इस सामग्री को इकट्ठा करने और लिखने में दास का पूरा दिन लग गया। दास जब रात को खाना खाने के लिये बैठा तो दिन भर जो पढ़ा, सुना या लिखा था, आंखों के सामने घूमने लगा। अकस्मात् दास को ध्यान आया कि जो बातें माताजी ने पवित्र 'बाणी' के आधार पर कही हैं, क्या उनका ज़िक्र हमारे वेद आदि सत्य शास्त्रों में भी आया है या नहीं। दास खाना भी खाये जा रहा था, और मन की आंखों के सामने उपनिषदों, रामायण और गीता के श्लोक और चौपाइयां एक-एक कर घूम रहे थे। दास हैरान था कि जो कुछ माता जी ने पवित्र 'बाणी' द्वारा समझाया था, उसका ज्यों का त्यों रूप हज़ारों-हज़ारों वर्ष पहले वेद शास्त्रों में अंकित पाया। दास यहां केवल दो-चार ही उद्धरण प्रस्तुत कर रहा है ताकि हमारी यह भ्रान्ति दूर हो सके कि वेदों-शास्त्रों में कुछ और लिखा है और गुरबाणी में किसी और बात का ज़िक्र है। गुरबाणी में तो पहले ही ऐसा फैसला देते हुये फरमाया है कि –

चारि पुकारहि ना तू मानहि।।
खटु भी एका बात वखानहि।।
दसअसटी मिलि एको कहिआ।।
ता भी जोगी भेटु न लहिआ।।

खैर, प्रस्तुत है उपनिषद, गीता और रामचरित के कुछ उद्धरण –

केन उपनिषद इन्सान को चेतावनी देता है कि इस जीवन में यदि ब्रह्म को जान लिया, तब तो कुशल है, नहीं तो महान विनाश है। मूल शब्द इस प्रकार है –

इह वेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन महती विनिष्टः।

ऋग्वेद में तो यहाँ तक कहा है कि –

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।

अर्थात् जो ब्रह्म को नहीं जानता, वह वेद से क्या करेगा। यजुर्वेद का निश्चित मत है कि... **तमेव विदित्वाति मृत्युमेति** अर्थात् ब्रह्म को जानकर ही मनुष्य मृत्यु को लांघ जाता है।

गुरबाणी का आदेश है कि 'प्रभु–परमात्मा की जानकारी और इसके सामीप्य से गुरसिख को लोक और परलोक के सुख मिलते हैं।' इसका वर्णन माताजी ने बड़े विस्तार से जगह–जगह पर किया है, उसका केवल सारांश दास यहाँ दे रहा है। माताजी का कथन है –

''जिन्हें गुरु की कृपा से अंग–संग निरंकार की सोझी हो जाती है, उनका जन्म–मरण का चक्कर खत्म हो जाता है। उन्हें संसार के सुख सहज में प्राप्त हो जाते हैं।

माताजी ने गुरसिखों को एक खास बात की ओर ध्यान दिलाते हुये कहा है कि **जानकारी तभी पूरी मानी जाती है, जब जिसे जाना है, उस पर विश्वास आ जाये।** बाणी कहती है कि –

करणैहारू पछानिआ।। सरब सूख रंग माणिआ।।

गुरबाणी का यह भी फैसला है कि – खुदा तो उन्हीं के लिये है, जिनके हृदय में गुरु द्वारा दिये गये सच के ज्ञान पर दृढ़ता हो जाये, विश्वास हो जाये कि यही निरंकार है, यह सभी ताकतों का मालिक है, सारी सृष्टि की रचना का रचनहार यह है, हर काम इसके हुक्म से हो रहा है तो उसका जीवन मुक्त हो जाता है, उसका परलोक सुहेला हो जाता है। कोरी जानकारी का नाम ज्ञान नहीं। जानकारी के साथ जब विश्वास जुड़ता है तो ही जानकारी पूर्ण ज्ञान बनती है और गुरसिख के सब बन्धन कट जाते हैं। 'बाणी' में आया है –

जा कै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ।।
ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ।।

भै ते निरभउ होइ बसाना।।
जिस ते उपजिआ तिसु माहि समाना।।

इस विश्वास की दृढ़ता की राह में आने वाली रुकावट के लिये महापुरुषों ने बताया है कि यह मन बड़ा चंचल है। बन्दर की तरह नाच नाचता है। क्षण में ऊंचाइयों को छूने लगता है, क्षण में पतन के गढ़े में जा गिरता है। इसको एक रस रखने का एक ही उपाय महापुरुषों ने बताया है कि –

मनु बेचै सतिगुर कै पासि।।
तिसु सेवक के कारज रासि।।

जो सद्गुरु को अपना मन सौंप देता है फिर वह दुनिया के जंजाल में नहीं फंसता। हर कर्म अपना फर्ज़ समझकर करता है। उसके अन्दर जो कर्त्ता–भाव होता है, वह खत्म हो जाता है। उसकी अवस्था ऐसी बन जाती है कि वह निष्काम भाव से सेवा में लगा रहता है, फल की इच्छा नहीं करता। ऐसे गुरसिख के बारे में लिखा है –

सेवा करत होइ निहकामी।।
तिस कउ होत परापति सुआमी।।

माताजी ने बड़े विस्तार से बताया कि जो गुरु की कृपा से अंग–संग निरंकार को हर समय देखते हैं, उनका जीवन निरंकार की तरह पवित्र हो जाता है। वे सभी में एक ही परमात्मा का नूर देखते हैं। उनकी रसना पर निरंकार–प्रभु के गुणों की ही चर्चा रहती है। दास भावना और नम्रता उनके जीवन का गहना होते हैं। वे माया में खचित नहीं होते। कमल की तरह निर्लेप होते हैं। निरंकार को अंग–संग जानने वालों से पाप कर्म नहीं हो सकता।

सच्चा गुरसिख शत्रु और मित्र में भेद नहीं करता। वह सबके चरणों की धूलि बन कर अपना वक्त गुज़ारता है। सबसे प्यार और सबका सत्कार उसका स्वभाव बन जाता है। भाणे को मीठा करके मानता है। एक निरंकार पर उसका भरोसा होता है। अभिमान और अहंकार को निरंकार के प्यार के रास्ते की रुकावट मानता है। वह सबके सुख–दुख को अपना मानकर सबके सुख में सुखी होता है और सबके दुख को खत्म करने की दातार से हर समय अरदास करता है। उसकी ज़ुबान पर हर समय यही अरदास होती है –

जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि।।
जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि।।

गुरु के उपदेशों को मानने वाला गुरसिख कभी मन में भी दूसरे के नुकसान की नहीं सोचता। उसके रोम–रोम में से निकलता है कि –

बिसरि गई सभ ताति पराई। जब ते साध संगति मोहि पाई।।
ना को बैरी नहीं बिगाना। सगल संगि हम कउ बनि आई।।

ऐसे गुरसिख ही संसार का उद्धार कर सकते हैं। गुरबाणी में ऐसे ही गुरसिखों की अवस्था का वर्णन करते हुये कहा गया है कि –

उरिधारै जो अंतरि नामु।। सरब मै पैखे भगवानु।।
अपरसु सगल निसतारै।। निमख निमुखु ठाकुर नमसकारै।।
नानक ओह अपरसु सगल निसतारै।।

पूज्य माता जी ने गुरसिखों को चेतावनी देते हुये फरमाया कि ये कर्म हमने करने हैं, दूसरों के अवगुण छांटने नहीं शुरू कर देने। हमें गुणों का ग्राहक बनना है अवगुणों की गठड़ी अपने सिर पर नहीं उठानी। सदा अपने गिरेबान (हृदय) में झांकना है। महापुरुषों की यह बात कि –

बुरा जो खोजन मैं चला बुरा न मिलिया कोए।
जो दिल खोजा आपना मुझ सा बुरा न कोए।।

हमारे लिये कही गई है। हम दूसरों को सुनाने लग पड़ते हैं। आप वैसा कर्म नहीं करते जैसा करने का आदेश हमारे गुरुओं अवतारों ने दिया है। गुरबाणी में इस बात का भी फैसला दिया है कि –

अवर उपदेसै आपि न करै। आवत जावत जनमै मरै।।

जब तक गुरसिख की कथनी और करनी में समानता नहीं आती, उसे भी आम संसार की तरह ही सुख–दुख भोगने पड़ते हैं।''

पूज्य माता जी ने उन लोगों का भी नक्शा खींचा है जो माया में खचित हैं, संसार के पदार्थों को ही सब कुछ मानकर उन्हें दिन–रात इकट्ठा करने में लगे हैं। माताजी के ये शब्द बड़े ध्यान से पढ़ें और विचार करें कि कहीं हम भी इसी झूले में तो नहीं झूल रहे है। पूज्य माताजी फरमाते हैं –

''निरंकार दातार को भूलकर संसार दुख भोग रहा है। संसार में आपा–धापी फैली हुई है। हमदर्दी तो दुनिया से उड़ ही गई है। हर कोई अपनी चिन्ता में ही डूबा हुआ है। माया का इतना प्रभाव बढ़ गया है कि आदमी–आदमी को इस तरह खा रहा है, जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा रही है। भाई से भाई केवल लड़ हीं नही रहा बल्कि एक–दूसरे के खून का प्यासा बना बैठा है। अब तो कुछ ऐसा लगता है कि मां–बेटी के रिश्ते, बाप–बेटे के रिश्ते दुनिया में खत्म हो चुके हैं। कचहरियां मुकद्दमों से भरी पड़ी हैं। यह तो घरों की हालत है, समाज की तो इससे भी बुरी हालत है। समाज को ऊंच–नीच का घुण (कीड़ा) खाये जा रहा है। दहेज की नुमाइश ने लाखों घरों को नरक में बदल रखा है। इसी तरह नशे ने कई घरों को शमशान का रूप दे दिया है। फैशनपरस्ती की दौड़ में हर कोई आगे निकल जाना चाहता है। घर में दो वक्त का खाना हो या न हो, पर सिनेमा के लिये जेब भी काटनी पड़े तो इससे भी संकोच नहीं करते। देश की हालत तो और भी खतरनाक है – कहीं भाषा के नाम पर कहीं प्रान्तों के नाम पर, कहीं जाति–मज़हब के नाम पर दिन–रात खून खराबे हो रहे हैं।'' माताजी ने इस सबका कारण बताते हुये एक जगह फरमाया कि –

परमेश्वर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग।।
वेमुख होए राम ते लगनि जनम वियोग।।
खिन महि कउड़े होइ गए जितड़े माइआ भोग।।

बाबा नानक जी फ़रमाते हैं –

नानक दुखीआ सभु संसारु।।

कई मेरे बहन भाई मन ही मन सोच रहे होंगे कि जितना नाम का कीर्तन आजकल हो रहा है, इतना पहले कभी नहीं हुआ। रात–रात भर अकालपुरख के गुण गाये जाते हैं। गुरुद्वारे, मन्दिर, मस्जिद, गिरिजाघर धर्म प्रेमियों से भरे हुये हैं। जितने गुरु–पीर आज बने बैठे हैं, पहले इतने कभी नहीं थे। सभी राम के नाम का या अल्लाह के नाम का जाप करवा रहे हैं। तब फिर हमारे देश में ही यह सारी

कलह–क्लेश क्यों? मुझे क्षमा करें, जब मैं यह कहती हूं कि यह सब पूजा अपनी मनोकामनओं की पूर्ति के लिये या किसी स्वार्थ पूर्ति के लिये हो रही है। किसी को परमात्मा की न तो सोझी है और न वे इसकी सोझी प्राप्त करना चाहते हैं।

लोग जिस इच्छा को लेकर यह सब कुछ कर रहे हैं, उन्हें वह सब कुछ प्राप्त हो रहा है। यश चाहते हैं तो यश मिल रहा है, धन चाहते हैं तो वह भरपूर मिल रहा है। लीडरी चमकाना चाहते हैं, तो वह भी चमक रही है, लेकिन मन की शान्ति की कोई कामना नहीं करता, इसलिये मन से अशान्त हैं। कामनायें बढ़ती जा रही हैं। तृष्णाओं का कभी कोई अन्त नहीं, इसलिये इनकी पूर्ति से कभी कोई सुखी नहीं हो सकता। स्वार्थ से स्वार्थ टकराने लगते हैं। अगर हम सच्चे दिल से प्रभु के हो जायें, प्रभु को अंग संग जान जायें, सबमें प्रभु का नूर देखने लग जायें तो इन सब मुश्किलों और लड़ाई–झगड़ों का अन्त अपने आप हो जायेगा।''

इसी सन्दर्भ में माताजी ने सभी गुरसिखों से एक बार अपील की भाषा में निवेदन किया –

''साध संगत, संसार को वैर–विरोध की आग से बचाने की ज़िम्मेदारी आप महापुरुषों की है। आपके गुरु ने आपमें अपनी सारी शक्ति भर दी है। लिखा भी है –

गुरसिख गुरु है एको जो गुर उपदेश चलावै।

लेकिन साध संगत, यहाँ एक बात का ध्यान रखना होगा कि गुरु ने तो हमें अपनी सारी ताकतों का मालिक बना दिया है, पर हम कई बार आपस में ही वर–श्राप देकर गुरु की बख्शिश से हाथ धो बैठते हैं। कभी–कभी हम अपनी सारी ताकत आपस में ही टकराकर नष्ट कर बैठते हैं। इस गलती से बचना है और गुरु के हुक्म के अनुसार सारे संसार के भले के लिये अपनी शक्ति का इस्तेमाल करना है।

साध संगत, शहनशाह जी कहा करते थे कि थोड़े से गुरसिख भी मैदान में निकल आयें जो गुरु के आशय अनुसार अमल करने वाले हों, तो दुनिया का कल्याण बहुत जल्दी हो सकता है।''

दास ज्यों ज्यों इन विचारों को लेखनीबद्ध करता जा रहा था, साथ–साथ पूज्य राजमाता जी का कर्मयोगी जीवन भी आँखों के सामने फिल्म की तरह घूमता जा रहा था।

दास को 1964–1965 में पहली बार बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज एवं पूज्य राजमाता जी के साथ प्रचार यात्रा करने का सुअवसर मिला। मुझे आज भी अच्छी तरह याद है कि माताजी जिस स्टेशन पर पहुँचतीं, सबसे पहले रसोई में जातीं ताकि बाबाजी की तबीयत के अनुसार खाना तैयार करवाया जा सके। अपने लिये उन्हें कैसा भी खाना मिल जाये, खा लेती थीं लेकिन बाबाजी के खाने पर खास ध्यान देतीं। दूसरा काम उनका यह होता कि वह बाबाजी के कपड़े खुद धोतीं, साथ ही बाकी पार्टी के कपड़ों को भी कुछ धोतीं, कुछ धुलवातीं। कपड़े सुखाने और प्रैस करने कराने में पूरा योगदान देतीं। कपड़े सुखाने की रस्सियां, चिटकनियां हमेशा साथ रखतीं। प्रेस भी प्रायः साथ ले जातीं ताकि महापुरुषों को कम से कम भाग–दौड़ करनी पड़े। इन सब कामों के लिये एक सेवादार बहन आपके साथ होती थीं पर माताजी ने उसे हमेशा एक सहेली की तरह ही अपने साथ रखा। दास ने कई बार ऐसा देखा कि माताजी उस सेवादार बहुत के साथ घुल–मिलकर अपने घर का हालचाल बांट रही होती थीं। दास का सिर उनके इस स्वभाव को देखकर स्वतः झुक जाता था। यहीं तक बस नहीं, हर जगह संगत की कुछ अपनी समस्याएं होती हैं, उन्हें हल करना या बाबाजी द्वारा करवाना भी आपके ज़िम्मे था। भक्तों की घरेलु समस्याओं को निपटाने में जितनी दातार ने आपको शक्ति दी है, शायद वह और किसी के हिस्से में नहीं। निरंकारी भवन दिल्ली का हो या टूर के दौरान कोई और शहर, आप सदा ही आर्थिक तौर पर गरीब महापुरुषों की बच्चियों के रिश्ते करवातीं और फिर उनकी शादी के खर्चे को जिस तरह खुद यथाशक्ति वहन करती थीं, वह हमारे सबके लिये अनुकरण करने योग्य है। जाति–पाति के बन्धन तोड़कर शादियां करवाने की जितनी प्रेरणा निरंकारी जगत को मिली है, उसका बहुत बड़ा श्रेय पूज्य माताजी को ही जाता है।

इन सब कामों के साथ–साथ आपने अपने गृहस्थ आश्रम की ज़िम्मेदारियों को जिस कुशलता से निभाया है, उसका वर्णन शब्दों में सम्भव नहीं। दास केवल यहाँ गृहस्थ को सुखी करने के सम्बन्ध में पूज्य माताजी के मुखार–विन्द से जो शब्द निकले हैं, उन्हें प्रस्तुत कर रहा है। पूज्य माता जी ने गृहस्थ आश्रम की महानता का वर्णन करते हुये फरमाया है कि –

‘‘साध संगत, गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों का सरताज है। गृहस्थी सबका पालन पोषण करता है। हमारे जितने गुरु–पीर या अवतार हुये हैं, उन्होंने गृहस्थ आश्रम में रहकर सारे संसार के कल्याण के लिये काम किया है। गृहस्थी जितना बड़ा और

कोई तपस्वी या त्यागी नहीं। वह बड़ी मेहनत से चार पैसे कमाता है। उन पैसों को हंसते-हंसते अपने परिवार के मैम्बरों के सुख के लिये अर्पण कर देता है।''

साध संगत, कुछ लोग गृहस्थ जीवन को जंजाल समझते हैं। वे गृहस्थ से दुखी होकर जंगल की राह लेते हैं। उन्हें हम कभी भी सच्चे भक्त नहीं मान सकते। सच्चे भक्त कभी भी कर्म के क्षेत्र से नहीं भागते। वे अपने कर्त्तव्यों को निभाने की कोशिश में लगे रहते हैं। वे बड़े सब्र-सन्तोष से दातार की दी हुई अमानत बाल-बच्चों का पालन-पोषण करके निरंकार की रहमतों को प्राप्त करते हैं।''

'ब्रह्मज्ञानियों के घर ही ईश्वर का सर्वोत्कृष्ट मन्दिर हैं', इसका वर्णन करते हुये माताजी का कथन है - ''साध संगत, गृहस्थ का अर्थ है 'अपने घर में रहना।' घर के कामकाज को जो ईमानदारी से निभाता है वही गृहस्थी है। गृहस्थ आश्रम भक्ति के मार्ग में रुकावट नहीं बल्कि गृहस्थी ही सच्चा भक्त होता है। घर का मतलब 'निज घ ार' ही है। हमारा 'निज घर' अंग-संग निरंकार है। इस निरंकार में रहते हुये इस निरंकार की रचना की सेवा-सत्कार करके हम सच्चे मायनों में भक्त बन सकते हैं। **हमारा घर पवित्र धर्म-स्थानों जैसा पवित्र और शान्ति देने वाला सिद्ध हो सकता है, यदि हम परिवार के हर मैम्बर के घट में सद्गुरु के दर्शन करें।**

साध संगत, जिस इन्सान को हर वक्त निरंकार दातार का ध्यान रहता है, जो हर समय सद्गुरु, साध संगत की महिमा का वर्णन करता रहता है, निरंकार को अंग-संग जानकर दातार के भय में रहकर अपना हर स्वास (श्वास) लेता है, उसके घर के बाकी सब मैम्बर भी अगर मिलकर घर में यही काम करते हैं तो उस बहन-भाई के घर को इस धरती पर ही स्वर्ग समझना चाहिये। जहाँ निरंकार का हर समय सिमरन होता हो, उस घर में प्रवेश करते ही मन को शान्ति अपने आप मिलने लगती है।''

माताजी का विश्वास है कि बच्चे को बनाने या बिगाड़ने में माता-पिता का बहुत बड़ा रोल है, उन्हें इस रोल को बड़ी सावधानी से निभाना चाहिये। माताजी ने फरमाया -

साध संगत, बच्चा आगे चलकर क्या बनेगा, अच्छा बनेगा, बुरा बनेगा या महानता को प्राप्त होगा, इसमें माता-पिता का बहुत बड़ा हाथ होता है। पालने में झूलने और मां की लोरियों में ही उसके आने वाले समय के बीज बोये जाते हैं। माता-पिता का फर्ज़ बनता है कि दाता की दात-बच्चों को बड़ी लगन से पालें। उन्हें इतना लाड-प्यार

न करें कि वे बिगड़ जायें या ज़िद्दी हो जायें और इतना डरा–धमका कर भी न रखें कि उस बच्चे का विकास ही रूक जाये या काम के योग्य ही न रहे और हम पर बोझ बना रहे। अपने बच्चें को सदा अपने साथ सत्संग में लाना चाहिये ताकि उनके कोमल मनों पर महापुरुषों की दाप पड़ सके और वे आने वाले समय में पक्के सेवादार गुरसिख बनकर संसार की सेवा करने के काबिल हो सकें।

साध संगत, गृहस्थी सन्त–महापुरुषों को घर में बड़ी सावधानी से विचरना चाहिये। उन्हें याद रखना चाहिये कि उनके हर कर्म का प्रभाव उनके बच्चों पर जाने–अनजाने तौर पर हो रहा है। जिन्होंने वीर अभिमन्यु की कहानी सुनी या पढ़ी है, वे जानते होंगे कि बच्चे के जन्म होने से पहले ही उसकी शिक्षा का आरम्भ हो जाता है। इसलिये माता–पिता को हर समय निरंकार के रंग में रहकर अपना जीवन आपस में प्यार–सत्कार से गुज़ारना चाहिये ताकि दातार जिस बच्चे या बच्ची की ज़िम्मेदारी उन पर डालने जा रहा है, उसे दातार के हुक्म से अच्छी तरह निभाकर वे निरंकार सद्गुरु की रहमतें हासिल कर सकें। माता–पिता केवल देह करके ही बच्चे को जन्म नहीं देते बल्कि बच्चों के पहले उस्ताद भी वही होते हैं। बचपन में माता–पिता जो चाहें, अपने बच्चों को रूप दे सकते हैं, क्योंकि बच्चों का मन उस समय कच्ची मिट्टी की तरह होता है। जैसे कच्ची मिट्टी से सुराही बनाना चाहें तो सुराही बन सकती है, घड़ा बनाना चाहें तो घड़ा बनाया जा सकता है, ठीक इसी तरह बच्चे को अच्छा या बुरा जो भी बनाना चाहें, बनाया जा सकता है।

साध संगत, इसका मतलब यह नहीं कि माता–पिता ही सब कुछ सिखलाते हैं, या केवल उनका ही प्रभाव बच्चों पर पड़ता है बल्कि कई बार तो बच्चों पर आस–पास के माहौल का माँ–बाप से भी ज्यादा असर पड़ता है। माता–पिता स्याने हों तो उसे उन प्रभावों से बचा सकते हैं। उनको अच्छे–बुरे की पहचान कराकर बुरे मार्ग से हटाकर अच्छे मार्ग पर ला सकते हैं।''

बच्चों की शिक्षा–दीक्षा या निर्माण में पिता से भी ज्यादा माँ का उत्तरदायित्व होता है, इस सन्दर्भ में माताजी फ़रमाती हैं कि –

साध संगत, माता–पिता दोनों की ज़िम्मेदारी होती है कि दातार की अमानत बाल–बच्चों को लिखायें–पढ़ायें और उन्हें समाज का एक अच्छा अंग बनायें, लेकिन साध संगत, पिता से ज्यादा ज़िम्मेदारी माँ की होती है क्योंकि माँ बच्चे को अपने उदर में रखकर उसकी पालना शुरू करती है। जन्म के बाद भी बच्चे का पालन–पोषण माँ के ही

जिम्मे होता है। बच्चा अपना सारा समय माँ के पास ही रहकर हंसता–रोता, खाता–पीता और खेलता–कूदता है। इसलिये माँ उसे जन्म देने वाली ही नहीं, शिक्षा–दीक्षा देने वाली भी होती हे। वैसे भी माँ जो कुछ खाती है, बच्चे पर सीधा असर होता है। ठण्डी चीज़ खाती है तो बच्चे को ठण्डी (सर्दी) लग जाती है और सख्त चीज़ खा लेती है तो बच्चे के पेट में दर्द शुरू हो जाता है। इसी तरह माँ को याद रखना चाहिये कि अगर वह बच्चे के सामने निन्दा चुगली करेगी, घर में बर्तनों की तोड़–फोड़ करेगी या झगड़ा–रगड़ा करेगी तो उसके बच्चे भी यह सब कुछ करना शुरू कर देंगे। अगर हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे आगे चलकर हमारा नाम रोशन करें तो हमें सदा सावधानी बरतनी चाहिये और गुरु के आशय अनुसार प्रीत–प्यार से घर में उठना–बैठना और बोलना–चालना चाहिये।''

पूज्य राजमाता जी **पति–पत्नी के रिश्तों को सबसे ज्यादा पावन और पवित्र** बताते हुये फरमाती हैं –

साध संगत, गृहस्थ के मकान की आधारशिला यदि माता–पिता को मानें तो पति–पत्नी को इस मकान के बोझ को अपने ऊपर उठाने वाले दो मुख्य खम्भे (स्तम्भ) मानना चाहिये। गृहस्थ आश्रम की सफलता के लिये इन दोनों को एक–दूसरे की भावनाओं, गुण–कर्म–स्वभावों और एक–दूसरे से लगाई गई उम्मीदों को बड़ी सावधानी से जानने समझने की कोशिश करनी चाहिये। हमारे शास्त्र हमें बताते हैं कि हमारे आपसी सम्बन्ध अचानक नहीं बन जाते बल्कि इनके पीछे कई जन्मों के कर्मों का कारण होता है। ठीक इसी तरह पति–पत्नी का सम्बन्ध कोई गुड्डी–गुड्डे के ब्याह (विवाह) की तरह नहीं हो जाता बल्कि इन दोनों का संयोग किसी बड़े लक्ष (लक्ष्य) के लिये होता है। साध संगत, पति–पत्नी सृष्टि रचना की नींव हैं। जैसे रथ के दो पहिये होते हैं या पक्षी के दो पर (पंख) होते हैं, इसी तरह गृहस्थ आश्रम के भी दो पहिये या दो पंख पति–पत्नी होते हैं। रथ के दो पहियों में से एक पहिया टूट जाये या लड़खड़ा जाये या पक्षी का एक पंख कमज़ोर पड़ जाये तो वे चल या उड़ नहीं सकते। इसी तरह पति–पत्नी में से एक पिछड़ जाये, तो दूसरे का विकास भी रुक जाता है।

साध संगत, यह बात तो मैंने संसार के पति–पत्नियों की बताई है, गुरमुख पति–पत्नी तो बहुत ऊंचा दर्जा रखते हैं। यहाँ तो पति–पत्नी एक–दूसरे में अपने निरंकार सद्गुरु की जोत (ज्योति) के दर्शन करते हैं।

यदि संसार मूर्ति में भगवान को मानकर उसके सामने सिर झुकाकर अपनी मनोकामना पूरी कर रहा है, तो जो पति–पत्नी एक–दूसरे में साक्षात् भगवान के नूर के दर्शन कर रहे हैं, भला एक–दूसरे की सेवा या सत्कार करके उन्हें किसी चीज़ की कमी कैसे रह सकती है!

साध संगत, जो पति–पत्नी एक–दूसरे में अपने निरंकार–सद्गुरु के दर्शन नहीं करते, उनके लिये फिर निरंकार कहीं भी नहीं है। मैं मानती हूं कि घर में कभी–कभी पति–पत्नी का किसी बात पर मतभेद हो जाना कोई गैर कुदरती बात नहीं। लेकिन निरंकार का ज्ञान रखने वाले पति–पत्नी के मन में उसका असर पानी पर लकीर से ज्यादा नहीं होना चाहिये। अगर होता है, तो समझ लेना चाहिये कि अभी हम गुरमत में कच्चे हैं। पक्के गुरसिखों में ऐसा होना सम्भव नहीं।''

दास का स्वभाव है कि जब कुछ सामग्री कहीं से संग्रहित करके लिख लेता है, तो उसे बड़े गौर से पढ़ता है ताकि पता लग सके कि कहीं श्रृंखला या क्रम में कोई व्यवधान तो नहीं आ गया। माताजी के उपर्युक्त विचारों को संग्रहित करने और क्रमवार लिखने के बाद ज्यों–ज्यों पढ़ने लगा तो रह–रहकर यह विचार आया कि इस माँ की कथनी और करनी में कितनी समानता है। माँ ने कितने सरल शब्दों में भौतिक सम्बन्धों को ईश्वरीय सम्बन्धों में परिणत कर दिया है। भौतिक दृष्टि से जो केवल संसार चलाने के लिये साधारण बन्धन हैं, उन्हें कितनी सहजता से आध्यात्मिकता की दृष्टि से शिव और शक्ति अर्थात् रचता और रचनहार के सर्वोत्कृष्ट स्तर पर ला खड़ा किया है? दास हैरान था कि माँ ने माँ की ज़िम्मेदारी और पिता के फर्ज़ों का बड़े विस्तार से जगह–जगह ज़िक्र किया है, लेकिन माता–पिता कितने महान हैं, उनकी तपस्या और त्याग कितना अद्भुत है, उनकी सेवा–सुश्रुषा बच्चों के लिये कितनी अनिवार्य है, इसका ज़िक्र कुछ कम मिला। दास, वैसे तो माताजी से वायदा करके आया था कि अब मैं उनका टाइम नहीं लूंगा लेकिन इस बात का कारण पूछने के लिये अनायास कदम माताजी के कमरे की ओर बढ़ने लगे। माताजी ने दास को आया देखकर कहा, ''शास्त्री जी, कोई काम है? ''नहीं, माताजी'' ''तो फिर कुछ और पूछना है?'' ''जी हाँ, माताजी।'' इतना सुनते हुये माताजी पास ही पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गये और दास ने कालीन पर बैठते हुये निवेदन किया, माताजी, दास ने आपके विचारों (प्रवचनों) की कुछ टेपें सुनी हैं, और कुछ जगह–जगह छपी सामग्री भी एकत्रित की है। इस तरह दास के पास लिखने के लिये काफी सामग्री हो गई है। माताजी, गृहस्थ पर आपके विचार पढ़कर आनन्द आ गया है। गृहस्थ आश्रम के पालन में जो गुण इन्सान के घर को स्वर्ग बनाते हैं, वे भी पढ़ने को मिले हैं लेकिन

माता–पिता की सेवा या माता–पिता की देन का ज़िक्र बहुत कम मिला है, इसलिये दास चाहता है कि आप अपने मुखारबिन्द से माता–पिता के प्रति बच्चे–बच्चियां, जो हमारे भावी समाज के कर्णधार हैं, उन्हें भी अपने फर्जों की सही जानकारी हो सके।''

माताजी ने मुस्कुराते हुये कहा, ''माता–पिता की सेवा के बारे में जितना कहा जाये कम है। माता–पिता इस धरती पर गुरु को छोड़कर सबसे ज्यादा पूजा और सेवा के योग (योग्य) हैं। **जो बच्चे सुबह उठकर अपने माता–पिता के चरण छूकर नमस्कार करते हैं, उनके जीवन में कभी कोई कमी नहीं आती।** माता–पिता के आशीर्वाद में बहुत बड़ी शक्ति है। यह कितने दुःख की बात है कि हमारे देश में एक तरफ तो पितरों की पूजा की जाती है, पितरों का मतलब है जो शरीर करके हमारे बीच में नहीं हैं, उनके निमित दान–दक्षिणा दी जाती है और दूसरी तरफ हम जीती–जागती भगवान की मूर्तियों यानि माता–पिता को कमरे से बाहर आंगन में और फिर आंगन से बाहर गली में उनके रहने का प्रबन्ध करने में संकोच नहीं करते। मैं तो समझती हूं कि **दुनिया में अगर कोई देवी–देवा हैं तो हमारे लिये हमारे माता–पिता हैं। जो लोग घर के इन देवी–देवताओं का निरादर करके किसी और देवी–देवता को रिझाने में लगे हैं, उन जैसा दुनिया में भोला और अज्ञानी और कोई नहीं।''** माताजी यह कहकर अकस्मात् मौन हो गईं। दास ने समझा कि उन्होंने जो कुछ कहना था, कह दिया है। दास यह सोचकर अपने स्थान से उठना ही चाहता था कि माताजी ने फिर कहना शुरू किया –

''माता–पिता तप और त्याग के जीते–जागते चित्र हैं। माता–पिता अपना सब कुछ अपने बच्चों पर न्यौछावर कर देते हैं। आप भूखे सो सकते हैं, आप सर्दी में ठिठुर सकते हैं, आप गर्मी के झोंको को सहन कर सकते हैं लेकिन बच्चों को भूखा–प्यासा या रोता–धोता नहीं देख सकते। माता–पिता के तप और त्याग का नक्शा शब्दों में नहीं खींचा जा सकता। माता–पिता की महानता पर किताबें लिखने की कोई ज़रूरत नहीं। माता–पिता का जीवन खुद एक खुली किताब है जिसे बच्चे दिन में कई–कई बार पढ़कर अपने फर्जों को पहचान सकते हैं और उन्हें अमल में उतारकर इस लोक के सब सुख प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं।''

यह कहकर अब माताजी उठने की तैयारी करने लगे परन्तु दास की प्रार्थना पर कुछ और मिनटों के लिये बैठ गये। दास ने बड़े ही गम्भीर भाव में पूछा, **''माताजी, एक तरफ अगर एक लड़के के माता–पिता हों, और दूसरी तरफ उसकी पत्नी हो और पत्नी अपने पति से जो चाहती हो वह उसके माता–पिता न चाहते हों और जो माता–पिता**

चाहते हों, वह उसकी पत्नी को पसन्द न हो तो लड़के के लिये तो धर्म–संकट खड़ा हो जायेगा। आप ही बताइये कि उसे तप और त्याग की मूर्ति अपनी पत्नी का पक्ष लेना चाहिये या जीवनदायिनी जोड़ी माता–पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिये?''

माताजी मुस्कुराये और कहने लगे – ''ऐसी बात लगभग हर घर में होती है और उसके काफी भयानक परिणाम भी देखे गये हैं। घर की इस कशमकश में कई हंसते बसते घर उजड़ जाते हैं। लेकिन मेरा विश्वास है कि यदि पत्नी और माता–पिता ज्ञानवान हैं और वह लड़का भी गुरु आज्ञा में जीवन जीने वाला है तो उसके सामने ऐसी समस्या खड़ी ही नहीं हो सकती क्योंकि उस घर में हर कोई हर काम एक दूसरे की सलाह और सहमति से करता है। लेकिन घर में ऐसा वातावरण न हो तो लड़के को माँ–बाप को माँ–बाप की जगह रखना चाहिये और पत्नी को पत्नी की जगह पर। एक का आदर और दूसरे का विरोध भी इस ढंग से करना चाहिये कि सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। उसे सदा पुल का काम करना चाहिये।''

दास ने बीच में ही टोकते हुये पूछा, ''माताजी, पुल का यहाँ क्या अर्थ है?'' माताजी ने फरमाया, **''नदी या नहर के दो किनारे होते हैं। इधर खड़ा उधर वाले को पार बताता है और उधर खड़ा इधर वाले को पार बताता है। इस आर–पार के झगड़े को पुल द्वारा ही मिटाया जा सकता है। कभी इधर वाला पुल द्वारा उधर चला जाये और कभी उधर वाला इधर आ जाये तो एक दूसरे के पास आने–जाने से उनका यह हठ अपने आप खत्म हो जायेगा कि यह पार है या वह पार है।**

माताजी ने एक क्षण रुककर कहा कि – ''इसलिये ही तो माता–पिता को ही ज्यादा कहा जाता है कि वह अपने बच्चों को जन्म से ही ऐसी ट्रेनिंग देना शुरू कर दें ताकि गृहस्थ आश्रम में पहुँचकर उन्हें किसी मुश्किल का सामना न करना पड़े।''

दास ने पुनः चरण स्पर्श करते हुये निवेदन किया, ''माताजी, आप दिन–रात सद्गुरु बाबा गुरबचन सिंह जी के साथ और अब बाबा हरदेव सिंह जी महाराज के साथ कदम से कदम और कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रचार कार्य में रत हैं। सुबह कहीं, शाम कहीं और रात न जाने कहाँ जाकर बिताते हैं।'' माताजी मुझे रोककर कुछ कहना चाहते थे पर मैं अपने प्रवाह में बहता चला गया और उनके संकेत की तरफ भी ध्यान न दे सका। मैं कह रहा था–

''माताजी, प्रचार–कार्य निश्चित ही मिशन का आधार है, इसमें हमें किसी को भी सन्देह नहीं और जिस तन्मयता से आपने अपना समग्र जीवन प्रचार और प्रसार को समर्पित कर रखा है, उसकी गरिमा का अनुमान लगा पाना असम्भव है। परन्तु रह–रहकर एक सवाल मन में उमड़–उमड़ कर सामने आता है कि इतनी व्यस्तता में आप अपने परिवार के प्रति, सगे–सम्बन्धियों के प्रति आपके जो कर्त्तव्य हैं, उन्हें, मेरे विचार में, निभाने में यह तो नहीं कहता कि आपने लापरवाही या कोताही बरती हो परन्तु यह निश्चित है कि आपने जितना समय, जितना ध्यान इनकी तरफ आपको देना चाहिये था, दे नहीं सकी होंगीं। क्या माताजी, आपको ऐसा नहीं लगता कि आपका यह पक्ष कमज़ोर रह गया होगा?''

माताजी काफी देर तक विचार की मुद्रा में मौन बैठे रहे। अकस्मात् अपने मौन को भंग करते हुये फरमाना शुरु किया –

''शास्त्री जी, आपने मेरी ज़िन्दगी को पिछले पन्द्रह–बीस साल से अपनी आंखों से देखा है कि मैंने कभी अपने फर्ज़ों की ओर से मुख नहीं मोड़ा। यह ठीक है कि मैं प्रचार कार्य में जुटी रही, लेकिन बच्चों की पढ़ाई, उनकी ज़रूरतों अथवा उनके लालन–पालन में कभी कोई कमी नहीं बरती। मैं तो खुद हर माता–पिता से गाहे–बगाहे कहती रहती हूँ कि बच्चों की परवरिश दूसरों पर मत छोड़ना। बच्चों को सिर्फ चीज़ें ही नहीं चाहिये होतीं, माँ–बाप का लाड–प्यार मिलना भी उससे कहीं ज्यादा ज़रूरी होता है और वह मैंने सचमुच पूरी शक्ति के साथ अपने बच्चों को दिया है।''

पूज्य माताजी ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुये कहा – ''शास्त्री जी, आपने तो सुना भी है कि शहनशाह जी अक्सर कहा करते थे कि 'जो परोपकार में अपना समय लगाते हैं और साथ ही पारिवारिक ज़िम्मेवारियों का जिन्हें ध्यान रहता है, उनके कार्य करने के लिये दातार स्वयं ही साधन बना देता है।' मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ, मेरे माता सोमावन्ती जी ने मेरी इन सब ज़िम्मेवारियों में पूरा हाथ बंटाया और जब मैं प्रचार–यात्राओं पर रहती थी तो उन्होंने ठीक मेरी तरह मेरे बच्चों की पूरी देखभाल की तथा उनका मार्ग दर्शन किया।''

पूज्य माताजी बिना रुके आगे बोलती रहीं–

''रही बात सगे–सम्बन्धियों की, तो वह भी आपके सामने है कि उनके प्रति जो मेरे फर्ज़ हैं, मैंने कैसे भी हुआ, कैसे भी किया, उन्हें पूरा मान–सम्मान दिया। उनके हर

फंक्शन में मैंने समय निकालकर पूरा-पूरा भाग ही नहीं लिया बल्कि जो मेरी लेन-देन की ज़िम्मेदारी है, मैंने एक हिन्दुस्तानी गृहस्थी की तरह निभाने का सदा यत्न किया है, चाहे वह मेरे मायके का परिवार है या ससुराल का। आप जानते हैं कि मेरी चार बेटियाँ हैं। उन सबकी शादियाँ भी हुईं। दातार की कृपा से आज वे अपने ससुराल में केवल सुखमय जीवन ही व्यतीत नहीं कर रही हैं बल्कि दूसरों के लिये मिसाल बनी हुई हैं। पिछले कई वर्षों से मेरे सम्बन्ध मेरी बेटियों के ससुराल वालों से हमेशा एक भाई व बहिन जैसे रहे हैं और मुझे कभी भी अपने व उनके परिवार में रत्तीभर भी फर्क नज़र नहीं आया। इसका मुख्य कारण मैं समझती हूँ कि **''मैंने, मेरी बच्चियों ने और सभी सम्बन्धियों ने भी रिश्तेदारी से पहले गुरु की मति को आगे रखा है और सदैव यह याद रखते हैं कि हमारी रिश्तेदारी केवल इसीलिये हुई क्योंकि हम सभी गुरु के सत्संग में आने वाले सत्संगी थे।** इसीलिये मेरा सबके लिये यही सन्देश है कि चाहे वह व्यापार हो, परिवार हो अथवा संसार हो, जहाँ भी हम विचरें, यदि गुरु की मति को जीवन के हर पहलु में पहल देंगे तो जहाँ हमारे सम्बन्धों की नींव सच्ची और पवित्र होगी वहाँ अपने परिवार को ओर समाज को सुन्दर देन भी दे सकेंगे।''

''माताजी, आपने व्यापार और संसार की बात की है तो कृप्या यह भी बतायें कि एक गुरसिख को दूसरे गुरसिख के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये?'' मैंने बड़ी जिज्ञासा से पूछा।

माताजी ने मुस्कुराते हुये कहा, एक गुरसिख के साथ दूसरे गुरसिख का रिश्ता केवल सत्य के आधार पर ही होना चाहिये। इस परम-सत्ता परमात्मा को, जिसका ज्ञान सत्गुरु ने हम सबको दिया है और हमें गुरसिख की पदवी मिली है, हमें इसका हर समय एहसास रखकर और गुरु के भय में रहकर विचरना चाहिये। हमारा लेन-देन बिल्कुल साफ और सुथरा होना चाहिये, हमारी वाणी मिठास और नम्रता से भरी हो। हर गुरसिख को गुरु का रूप मानकर उसका आदर करना, सत्कार करना हर गुरसिख का परम कर्त्तव्य है। जैसे बाबाजी फरमाया करते हैं कि यदि किसी गुरसिख के साथ हमारी कोई अनबन भी हो जाये तो वह पानी के ऊपर लकीर की तरह होनी चाहिये और हमारा प्रेम पत्थर के ऊपर लकीर की तरह।

''माताजी, आप अपने प्रवचनों में कई बार फरमाती हैं कि धन और जायदाद के लिये आज बेटा बाप को नहीं पहचानता, बेटी माँ को कोर्ट कचहरी में लिये फिरती है। जिधर भी देखें छोटी-छोटी बात के लिये अपने ही परिवार में लोगों ने इतनी ऊँची

नफरत की दीवारें खड़ी कर रखी हैं कि एक दूसरे को देखना भी पसन्द नहीं करते लेकिन जब हम आपके जीवन को देखते हैं तो वर्षों से आप एक ही सहजभाव से जीवन व्यतीत कर रही हैं, न ही आपने अपना कोई मकान ही बनवाया है और न ही कभी आपको धन दौलत व जायदाद के लिये चिन्तित देखा है। इस बारे थोड़ा रोशनी डालिये।''

माताजी ने बाबा गुरबचन सिंह जी की तरह ठहाका मारकर हँसते हुये कहा कि ''आज सांसारिक वस्तुओं के लिये इन्सान घर की शान्ति व सुख दांव पर लगा देता है। सदैव का सुख तो सब्र व सन्तोख से मिलता है, जो सद्गुरु के वचनों का पालन करके ही प्राप्त हो सकता है, इसीलिये तो सद्गुरु हमें ब्रह्मज्ञान देने से पहले ही तन–मन–धन को प्रभु को समर्पण करने की बात कहते हैं। लेकिन इन सभी बुराइयों की जड़ मनुष्य का अभिमान है। हमने गुरु की शिक्षा को ही धारण करना है क्योंकि इसी से ही यह सभी झगड़े खत्म हो सकते हैं। जहाँ तक मेरी अपनी बात है, मुझे तो दुनिया के सारे घर अपने ही घर लगते हैं और दुनिया के सारे इन्सान, भगवान की मूर्तियां। बाबा अवतार सिंह जी व बाबा गुरबचन सिंह जी मुझे यही कहा करते थे कि यह सारे गुरसिख आपके बच्चे हैं और अब भी मैं सन्तों के घर जाती हूँ तो वो अपने ही घर महसूस होते हैं। मैंने अपने जीवन में हू–ब–हू यही पाया है कि जो ऐसी भावना रखता है, निरंकार–दातार उसकी हर ज़रूरत को पूरा करता है और कभी भी किसी चीज़ की कमी नहीं आती। मुझे आज भी कल की तरह याद है जब दिल्ली निरंकारी भवन बना था तो एक दिन बाबा अवतार सिंह जी अकेले विचार में डूबे हुये बैठे थे। मैंने आकर श्रद्धा पूर्वक नमस्कार की और उनकी चुप का कारण पूछा। शहनशाह जी ने कहा – 'बाकी सभी तो जाकर अपने घरों में बैठ गये हैं लेकिन मेरा तो बाल बला कर्ज़ाई हो गया है।' मैं उस रात सो नहीं सकी और यही सोचती रही कि उस धन का क्या फायदा, उन ज़ेवरों का क्या फायदा जो सद्गुरु के काम न आ सके। और दूसरे दिन मैंने अपने सभी ज़ेवर और अपनी सास जगत–माता बुधवन्ती जी के ज़ेवर जो उन्होंने बड़ी खुशी के साथ मुझे दे दिये थे, शहनशाह जी के चरणों में रख दिये। उस समय मेरी इस भावना को देखकर बाबा अवतार सिंह जी ने बहुत से वर और आशीर्वादें दीं और मेरे पति बाबा गुरबचन सिंह जी, जो उस समय गुरु गद्दी पर विराजमान नहीं थे, बहुत ही खुश हुये। मैं समझती हूँ कि आज तक उन्हीं वरदानों के कारण न ही मुझे कोई कमी आई है और न ही मेरे मन में ऐसा भाव ही जागा है कि मेरी कोई ज़मीन, जायदाद नहीं है। वैसे, हमारे मिशन की शिक्षा के अनुसार हर एक भक्त को समाज पर बोझ न बनकर अपनी नेक कमाई से ही घर

चलाना चाहिये और यही बाबा गुरबचन सिंह जी के आदेश अनुसार मैं भी करती रही हूँ 'निरंकारी मोटर' के नाम पर कारोबार भी चलता रहा है।

मैंने तो जीवन–भर सबके लिये मांगा है –

सुख सारे दुनिया दे पा दे मेरी झोली विच।
फिर भी मिलाई रक्खीं सन्तां दी टोली विच।।

दातार प्रभु हर भक्त को हर प्रकार की सुख–सुविधायें प्रदान करे, अच्छे–अच्छे कारोबार हों, सुन्दर–सुन्दर घर हों ताकि सभी खुले दिल से धर्म के मार्ग का पालन करते हुये सन्तों की सेवा कर सकें।''

''माताजी, यह पूछते हुये मैं डर भी रहा हूँ कि कहीं मर्यादा न भंग हो और मैं अपनी औकात से कहीं आगे न निकल जाऊँ, आप मुझे क्षमा करेंगीं। प्रश्न यह है कि आपने अपने ससुर जी को गुरु माना और पूजा की, अपने पति को गुरु के रूप में देखा और माना लेकिन यह सबसे आश्चर्य की बात है कि आप अपने पुत्र को भी गुरु मानकर भक्ति कर रही हैं, यह कैसे सम्भव हो पाया है?''

मेरे यह पूछने पर माताजी ने मेरी तरफ इस तरह देखा कि जैसे एक माँ नन्हे–मुन्ने बालक की तरफ देखती है, और कहा, मैं बचपन में सुना करती थी कि जब–जब गुरु–अवतार प्रकट हुये, घरवालों ने उन्हें कभी भी नहीं माना और शहनशाह बाबा अवतार सिंह जी के समय अरदास किया करती थी कि हे दातार, अब ऐसा न हो। अपने बच्चे ही नहीं, सभी दोस्त्र और मित्र, रिश्तेदार प्रभु भक्त हों, गुरु को मानने वाले हों। शायद दातार ने मेरी सुन ली। मैं अपने आपको बहुत ही सौभाग्यशाली मानती हूँ कि मुझे ऐसा पद प्राप्त हुआ है। गुरु तो ज्ञान की ज्योति का नाम है। यदि मैं केवल रिश्तों को ही देखती तो चाहे वह शहनशाह बाबा अवतार सिंह जी का समय था या बाबा गुरबचन सिंह जी का, मुझे वह रूहानी सुख कभी भी नहीं मिल सकता था, जो यह मैंने अपने जीवन में देखा है और उस समय परम आनन्द को कभी भी प्राप्त न कर सकती जिसे मैं 50–52 वर्षों से ले रही हूँ। जब यह ज्योति बाबा हरदेव सिंह जी महाराज में आ गई तो मेरा सौभाग्य था कि 27 अप्रैल, 1980 को बाबाजी को गुरुगद्दी का तिलक लगाकर जब मैंने बाबा हरदेव सिंह जी के चरण धोकर चरणामृत बनाया तो मुझे एक अलौकिक आनन्द प्राप्त हुआ। अपने पिछले तजुर्बे के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि दातार तेरा लाख–लाख शुक्र है कि मेरे

अन्दर पुत्र वाली भावना कभी नहीं आई और इस कारण वह रूहानी आनन्द बना हुआ ही नहीं, बल्कि बढ़ता ही जा रहा है। अब तो एक ही अरदास है कि दातार कृपा करना कि सद्गुरु बाबा हरदेव सिंह जी महाराज की सेवा करते हुये, गुरु के भय में रहते हुये, गुरु भक्ति करते हुये बाकी का जीवन व्यतीत हो। मेरा तो यही कहना है कि यदि गुरु को कोई केवल रिश्तेदार समझता है तो गुरु भी केवल रिश्तेदारी तक सीमित रहता है। यदि कोई सद्गुरु को प्रभु का साकार रूप मानता है तो सद्गुरु भी उसको अपने साथ-साथ तीन लोकों में प्रकट कर देता है चाहे वह गुरु की माँ, पत्नी, भाई-बहिन, सास-ससुर, चाचा, मामा या मामी, कोई भी क्यों न हो। इसमें अपने या पराये की बात ही नहीं होती।''

पूज्य राजमाता जी से विदा लेकर दास अपने लिखने वाले कमरे में पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर उस सामग्री को बिल्कुल अगल करने लगा, जिसका सम्बन्ध गृहस्थ आश्रम से था। दास को ऐसे लगा कि अगर दास इसे ही लेखनीबद्ध करता गया तो यह सारी पुस्तक गृहस्थ आश्रम को ही अर्पित हो जायेगी। माँ की बाकी विषयों पर जो देन है, उससे पाठक वंचित रह जायेंगे। इसलिये दास यहाँ उस सारी सामग्री में से माताजी द्वारा ''माँ'' और ''नारी-जाति'' के सम्बन्ध में जो विचार हैं, केवल उन्हें ही प्रस्तुत करके इस अध्याय को सम्पन्न मानेगा।

'मां' की गरिमा का जो चित्र माताजी ने शब्दों में खींचा है, वह निम्न प्रकार है-

'मां', बलिदान का, आत्म संयम का दूसरा नाम है। वह अपने पति, अपने परिवार, अपने नौकरों, अपने पड़ोसियों, अपने रिश्तेदारों व आये-गये मेहमानों की सुख-सुविधा का ध्यान करने के बाद ही अपनी ज़रूरतों की ओर ध्यान देती है। जब बच्चे की तबीयत खराब हो जाती है, तब मां का आराम हराम हो जाता है, जब पति पर कोई दुख-मुसीबत आ जाती है तो अपने सुख-दुख को भूलकर अपना सबकुछ अर्पण करने को तैयार हो जाती है। अपने हाथ की चूड़ियाँ, अपने गले का हार, यहाँ तक कि मंगलसूत्र को अर्पण करने में भी संकोच नहीं करती। उसकी सारी पूजा, सारी शक्ति, उसकी सारी सेवा अपने पति और अपने बच्चों के कल्याण के लिये होती है। वह अपनी हस्ती को भूलकर सेवा-सत्कार में दिन-रात जुटी रहती है। 'मां' में धरती मां से ज्यादा सहनशक्ति होती है। कुछ लोग 'मां' की इस बलिदान और सेवा भावना को मोह-ममता का नाम दे देते हैं। उन्हें याद रखना चाहिये कि सच्ची 'मां' कोई ममता की मारी यह सब कुछ नहीं करती बल्कि इसे दातार द्वारा दी गई ड्यूटी समझकर और अपने दुख-सुख से ऊपर उठकर ऐसा जीवन जीती है। काश, 'मां' ऐसा जी सके और

हम ऐसी 'मां' की कद्र कर सकें तो घर–गृहस्थ ही स्वर्ग का रूप धारण कर लेगा। फिर हमें किसी और लोक में स्वर्ग ढूंढने की ज़रूरत नहीं रहेगी।

पूज्य राजमाता जी के विचार जो उन्होंने एक निरंकारी ढंग से सम्पन्न हुई शादी के बाद वर–वधु को आशीर्वाद देते हुये व्यक्त किये, वे गृहस्थी के जीवन को सुखी बनाने का अचूक साधन हैं।

माताजी ने फरमाया – ''साध संगत, यह शादी जो बड़े सादा ढंग से सम्पन्न हुई है, इसे आपने अपनी आंखों से देखा है। दोनों परिवारों के मन में कितनी खुशी है, यह भी आप महसूस कर रहे हैं। शादी का मतलब ही खुशी है और खुशी एक–दूसरे पर वारे–वारे जाने से प्राप्त होती है। आपने अभी–अभी यह जो निरंकारी लावें सुनी हैं, अगर इस पर बच्चा–बच्ची, जिनकी शादी सम्पन्न हुई है, पूरी तरह अमल करें तो उनका गृहस्थ–जीवन सुखों से भर जायेगा। गृहस्थी में अगर सहनशक्ति का गुण और क्रोध पर काबू पाने की शक्ति आ जाये तो घर में कभी कलह हो ही नहीं सकती। सारे कलेशों की जड़ गलतफहमी है। दातार करे कि हम एक–दूसरे की भावना को समझकर एक–दूसरे का सत्कार करें तो हमारे गृहस्थी जीवन में खुद–ब–खुद खुशियां आने लगेंगीं। यह शादी दरअसल हमें एक बात समझाती हैं कि जिस तरह आज ये दो अलग–अलग जगह के स्त्री, पुरुष मिलकर खुशी का अनुभाव कर रहे हैं, इसी तरह सदीवी (शाश्वत) खुशी हासिल करने के लिये हर किसी की आत्मा को अपने पति परमात्मा को पाना ज़रूरी है। जैसे आज यह स्त्री अपने पति को पाकर सुहागवती हो गई है, ऐसे ही हम अपनी आत्मा को भी तभी भक्त–आत्मा कह सकेंगे, जब उसका भी पति–परमात्मा से रिश्ता जुड़ जायेगा।

साध संगत, हमें अपने सद्गुरु के आशय अनुसार शादियां–ब्याह (विवाह) करने चाहियें। दहेज, बैण्ड–बाजों, रोशनियों के फिजूल खर्चों से हमें बचना चाहिये। अगर हम ऐसा करेंगे तो शादी खाना आबादी होगी वरना आप देख ही रहे हैं कि संसार की क्या हालत है। समाज में नाक ऊंची करने के लिये अपना सब कुछ लुटा दिया जाता है, जिसके परिणाम सारा जीवन भुगतने पड़ते हैं।

साध संगत, ये बच्चे और इनके माता–पिता तो गुरमुख हैं, इन्हें इस समय कोई दिशा देने की ज़रूरत नहीं। इनको तो बचपन से ही प्रीत नम्रता की सिखलाई सद्गुरु और साध संगत से मिली है।''

दास इधर प्रवचन लिखता जा रहा था, उधर दास को युग–प्रर्वतक बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज के वे आदेश, जो उन्होंने मंसूरी कान्फ्रेंस में दिये थे, एक–एक करके याद आ रहे थे। दास उनको आप तक पहुंचाने की इच्छा को दबाने में अपने आपको असफल पा रहा है, हालांकि दास यहां उनका वर्णन विषयान्तर समझता है लेकिन आप दास की इस मानवोचित कमजोरी को क्षमा करते हुये निरंकारी लावों और युग–प्रर्वतक के विचारों को पढ़ें। दास समझता है कि अगर गृहस्थी इन भावनाओं के अनुसार अपना जीवन बना लें तो उनकी बहुत–सी गृहस्थी उलझनों का स्वतः ही अन्त हो जायेगा। युगप्रवर्तक के आदेश का सार कुछ इस प्रकार है –

- हमारी शादियां सुबह के वक्त रखी जायें ताकि रोशनियों की ज़रूरत न पड़े। दिन के वक्त में बैण्ड–बाजे और सजावट भी नहीं जंचते और शराब भी दिन में नहीं चलती। जो भी शादियां हों, उन्हें मिशन के आशय अनुसार किया जाये और शादी में 50 से ज़्यादा बाराती न लाये जायें।

- दहेज की नुमाइश को रोकना है। दहेज गुप्त रूप में देना चाहिये। दहेज अगर कोई मांगता है तो उससे रिश्ता करने से साफ इन्कार कर देना चाहिये। लेकिन माता–पिता को लड़की को उसका हिस्सा देने में कोई कोताही नहीं करनी चाहिये। इससे ही दहेज की लाहनत के प्रभावों से बचा जा सकता है। दहेज पर बैन लगा कर कुछ बनने वाला नहीं। इसमें लालच की जो प्रवृति आ गई है, उस पर काबू पाने की ज़रूरत हैं। इसके साथ ही शादियों में लड़के–लड़की के गुण–कर्म या स्वभाव देखे जाने चाहियें न कि उनकी जाति–पाति को विशेषता देनी चाहिये। हमें अपने रिश्ते–नाते जाति–बिरादरी से ऊपर उठकर करने चाहियें।

यहां दास माता जी के उस प्रवचन के अंश प्रस्तुत करने जा रहा है, जो आपने मंसूरी प्रचारक कान्फ्रेंस – 1973 में दिया था। इस प्रवचन के अंशों को पढ़कर जहाँ पाठकों को माताजी की वक्तृता शक्ति का पता चलेगा, वहां माता जी की सुधारात्मक एवं गुरु भक्ति से ओत–प्रोत भावनाओं की भी जानकारी प्राप्त होगी। माताजी ने अपने गुरसिख बहन–भाइयों को पूज्य बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज के आदेशों को क्रियात्मिक रूप देने की प्रेरणा देते हुये फरमाया कि –

''कल से आप महापुरुषों के विचार सुन रहे हैं। आपने हुजूर बाबा जी के अमूल्य विचारों को भी सुना है। हुजूर के आदेशों के पश्चात् किसी के बोलने की ज़रा भी आवश्यकता नहीं रहती। आप यह कभी न सोचें कि यह बात हुजूर बाबाजी की घ ारवाली कह रही है। यहाँ मैं जो कुछ भी कह रही हूँ, मेरी ये बातें एक पत्नी की बातें नहीं अपितु एक गुरसिख की बातें हैं। मेरी भी यही अरदास है कि जो भरोसा, सिदक, विश्वास इस द्वार से मिला है, सच्चा पातशाह रहमत करे, मैं भी उसको अपने जीवन में ला सकूं।'' आपने आगे फरमाया –

''यहाँ पर बहुत अच्छी बातें हुईं, कई विषयों पर अच्छे–अच्छे विचार प्रकट किये गये। जो किसी के मस्तिष्क में आया, कहा, क्योंकि इस प्रचार को विस्तार देना हमारे जीवन का परम लक्ष्य है। चूंकि हुजूर का अपना आदेश आया है कि आप सब यहाँ पर अपने सुझाव खुलकर दें, अन्यथा किसी प्रकार से भी उचित नहीं कि हम बहस करें। सद्गुरु के सामने तो हमें नतमस्तक होना चाहिये। अतः हुजूर बाबाजी के आदेश को ही हमने मानना है। भले ही, किसी समय आदेश मानने में कुछ कठिनाई ही सहनी पड़े या देखने में हमारा उस आदेश से कुछ मतभेद ही क्यों न हो। जैसे हुजूर ने इस बार नशीली चीजों को बन्द करने का आदेश दिया है। इस पर बड़ी कड़ाई से अमल करना है। भले ही ऐसा करने में कुछ कठिनाई महसूस हो। आप यह विश्वास रखें कि आदेश मानने में हमारी हानि कदापि नहीं हो सकती। मुझे याद है कि आज से दस–ग्यारह वर्ष पहले मुझे कोई शारीरिक रोग हुआ होगा। डॉक्टरों ने मांस खाने का परामर्श दिया और साथ ही स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि यदि मैं मांस का प्रयोग नहीं करूंगी तो मेरा जीवित रहना असम्भव है। लेकिन मेरा मन इस बात को नहीं माना। मैंने मन ही मन अरदास की, याचना की कि मुझे मांस खाने की ज़रूरत न पड़े। परिणामतः न मैंने मांस ही खाया और न ही मैं मरी। **अतः आज जो कुछ हमको हुजूर सच्चे पातशाह का आदेश मिला है, हम दृढ़ निश्चय करें और सौगन्ध खायें कि अब हमने किसी नशीली वस्तु का प्रयोग नहीं करना। विश्वास करो कि इनके बिना हम मरेंगे नहीं, हम जीवित रहेंगे।**

आप मुझे मां कहकर बुलाते हैं तो अब मैं आपसे एक मां के नाते कुछ कहना चाहती हूं। हमारे प्रचारकों का, हमारे प्रबन्धकों का ऐसा आदर्श जीवन होना चाहिये कि उन पर कोई उंगली न उठा सके। वे किसी का हक न दबायें, किसी से धोखा न करें। अब समय है कि हम संभल जायें और अपनी अवस्था बहुत ऊंची बनायें। हमने ऐसी करनी का आरम्भ अपने घर से करना है। भाई–भाई को कुछ देकर न चितारे, माता–पिता से प्यार हो। परन्तु ऐसा हो नहीं रहा। माता–पिता बच्चे से दिल से प्यार

नहीं करते और न ही बच्चे माता–पिता का आदर–सत्कार करते हैं और न ही उनकी सेवा–सुश्रुषा। कई बहनें मेरे पास आती हैं, कई भाई भी मेरे पास बिना झिझक अपने मन की बात कहने के लिये चले आते हैं। उनमें से एक बात मैं आपके सम्मुख रखती हूं। एक बार एक व्यक्ति को हुजूर शहनशाह जी ने एक काम करने के लिये फरमाया तो वह कहने लगा कि – यह काम तो मैं नहीं कर सकता परन्तु मेरे प्राण हाजिर हैं। याद रखो, हुजूर को किसी के प्राणों की जरूरत नहीं, हुजूर तो हर एक को सुखी करना चाहते हैं। इतिहास साक्षी है कि एक समय पर गुरु ने सिर की मांग की। वैसे गुरु ने सिर तो नहीं काटना होता, यह तो सिख की परीक्षा लेता है कि वह मेरे साथ दिल से प्यार करता भी है कि नहीं। उस समय भी सिर देने वाला कोई एक ही गुरसिख निकला। बातें तो बहुत करते हैं परन्तु इसे तो अमल की ज़रूरत है। हमारे घरों में जो व्यवहार हमारा एक–दूसरे से होता है, अथवा हो रहा है, उसमें भी सुधार लाने की परम आवश्यकता है ताकि हमारे पड़ोसियों पर भी हमारे प्यार–सत्कार का प्रभाव पड़ सके। यदि हम अपने घरों में लड़ाई–झगड़ा करेंगे तो लोग हमको कहने में संकोच नहीं करेंगे कि क्या तुम्हारा सद्गुरु तुमको यही सिखाता है। ऐसी बातें सुनकर हमारा सिर शर्म से झुक जाता है। हुजूर सच्चा पातशाह हमको लड़ना–झगड़ना नहीं सिखाता। जैसे शिक्षक सभी विद्यार्थियों को एक ही प्रकार से शिक्षा–दीक्षा देता है। शिक्षक के आदेश के अनुसार पढ़ने वाले विद्यार्थी तो परीक्षा में पास हो जाते हैं जबकि दूसरे असफल रह जाते हैं। इसमें दोष शिक्षक का नहीं होता, दोष तो आदेश न मानने वाले बच्चे का होता है।

एक बार एक महापुरुष को किसी के घर पर सास और बहु का झगड़ा निपटाने के लिये भेजा गया। उन्होंने जाकर उनको समझाना शुरु किया कि बहिन जी, इस प्रकार आपस में झगड़ा न करो। पड़ोस में लोग सुनेंगे तो वे हमारे बारे में क्या सोचेंगे। इस पर वह बहिन बोली, 'मैं आपको जानती हूँ, हमको समझाने से पहले आप अपने घर का सुधार करो।' मैं तो प्रचारकों से निवेदन करती हूँ कि वे पहले अपना सुधार करें, अपने बच्चों को ठीक करें, अपनी घरवाली को समझायें। घर के सब लोग अपना–अपना कर्त्तव्य निभायें, फिर अपने अड़ोस–पड़ोस में उनका आदर सत्कार बढ़ेगा। परिणाम स्वरूप हमारा प्रचार धीरे–धीरे सारी दुनिया को अपनी लपेट में ले लेगा। सच बात तो यह है कि हमारे ग़लत कर्म ही, हमारी गलती करनी ही हमको आगे नहीं बढ़ने देती। लेक्चर तो हम बढ़–चढ़कर देते हैं। हमारे भाषण भी बड़े धुआं–धार होते हैं। सुनते समय ऐसा लगता है कि मानो अभी सब सुनने वाले हुजूर सच्चे पातशाह के चरणों में गिर पड़ेंगे और इस आत्मज्ञान की प्राप्ति की पुरज़ोर मांग करेंगे, परन्तु निकलता तो कोई एक आध ही है या कभी–कभी दो–चार निकल आते हैं। आम लोग

तो यही कहते सुने जाते हैं कि हम इनको जानते हैं, इन्होंने अमुक व्यक्ति से उधार लिया, वह नहीं दिया। हर समय इनके घर में क्लेश रहता है, आदि–आदि। अतः मेरी तो सब महापुरुषों से यही प्रार्थना है कि पहले अपना चाल–चलन (चरित्र) ठीक करें।

हमने अपने बच्चों को संगत में आने की आदत डालनी है। देखने में यह आ रहा है कि बड़े–बड़े महापुरुषों के बच्चे साध–संगत में नहीं आते। इस सम्बन्ध में हम पर उंगली उठती है। आपके बच्चे तो केवल आपके बच्चे हैं परन्तु सद्गुरु के बच्चे तो साध–संगत के भी बच्चे होते हैं। आज सद्गुरु के अपने बच्चे तो सेवादारों की संगत तक में भाग लेते हैं। जहाँ कहीं संगत होती है, ये वहीं पहुँचने की कोशिश करते हैं और साथ ही अपनी शिक्षा की ओर पूरा ध्यान दे रहे हैं। सेठ साहिब जी (हरदेव सिंह) आपके सामने बैठे हैं। इन्होंने दिल्ली में इंगलिश मीडियम की संगत शुरू कर दी। तो मेरी यही प्रार्थना है कि हम **सबसे पहले अपना सुधार करें, अपने परिवार को, अपने बच्चों को हर प्रकार से साथ चलायें – संसारी कामों में भी और परमार्थ में भी। यदि हमारा कर्म सुन्दर बन जाये तो फिर हमको स्टेजों पर ऊंची–ऊंची आवाजें देने की ज़रूरत नहीं रहेगी। हमारे जीवन को देखकर ही लोग हमारे पीछे चलना शुरू कर देंगे।**

अभी तो हमारी भाषा में कुछ परिवर्तन आया है। हम महापुरुषों–महाजनों कहने लग गये हैं। जब हम किसी दुकानदार से सौदा लेने जाते हैं तो कह देते हैं कि महापुरुषों, यह चीज़ तो दिखाओ, तो वह तुरन्त समझ जाता है कि यह निरंकारी है। ऐसी मीठी भाषा तो इनकी ही है। जैसे हमारी भाषा में मिठास आ गई है, दातार करे ऐसे ही हमारी करनी भी पावन–पवित्र हो जाये। शहनशाह जी (बाबा अवतार सिंह जी) कहा करते थे कि मैंने आपको सफेद वस्त्र दिये हैं। लेकिन आपकी बाहरी वेशभूषा ही केवल साफ–सुथरी न हो, बल्कि दिल भी शुद्ध और पवित्र हों। आओ, आज मिलकर यही अरदास करें, प्रार्थना करें कि सच्चा पातशाह हमारे मुख से वही बात कहलवाये जो इसको अच्छी लगे, वे ही काम करवाये जो इसको भायें।''

पूज्य राजमाता जी के प्रवचनों के अधिकतर विषय साध संगत, सेवा, सुमिरण और गुरु–भक्ति रहे हैं। पूज्य माता जी ने साध–संगत अर्थात् सन्त–महापुरुषों की संगति के प्रभावों और परिणामों पर अपने विचार व्यक्त करते हुये फरमाया है कि –

''इसी जीवन में अगर हम चाहते हैं कि हमारा निरंकार दातार से मिलाप हो जाये और हमारा लोक भी सुखी हो जाये तो हम साध संगत की शरण लें। 'बाणी' में फरमया है कि –

साध कै संगि बुझै प्रभु नेरा।।
साध संगि सभु होत निबेरा।।

जब इतनी बड़ी रहमत हमें एक पूर्ण साधु की संगति से प्राप्त होती है तो जहाँ नाम के रंग में रंगे हुये अनेकों सन्त–महापुरुष इकट्ठे होकर हरि–यश करते हों, उसकी महिमा तो अपरम्पार है। कहा है –

एक सिख दोए साध संग पंज परमेश्वर।
दस बीस तीस की तो महिमा ही अपार है।

आप रोज़ ही देखते हैं कि जो जैसी संगत करता है, उसका वैसा जीवन बन जाता है। शराबी की संगति से आदमी शराबी और जुएबाज़ की संगति करने से आदमी जुआरी बन जाता है, इसी तरह सन्त–महापुरुषों की संगति से आदमी सन्त–महापुरुष बन जाता है। उसका जीवन महक से भर जाता है। मुक्ति या जीवन–मुक्ति जिसके लिये लोग कई तरह के जप–तप, कर्म–काण्ड करते हैं, सन्त महापुरुषों की संगति और उपदेश से सहज में ही मिल जाती है। कहा है –

जनम मरन के मिटे अंदेसे।।
साधु के पूरन उपदेसे।।

साध संगत में आकर हमारे अभिमान का अन्त हो जाता है। हमारा अभिमान या अहंकार किसी और तरह से नहीं मिटता। साध संगत के चरणों की धूलि को पाकर ही हमारे मन की हंगता (अहं भाव) का नाश होता है।

ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति की प्रेरणा भी हमें साध संगत से ही मिलती है। साध संगत की कृपा से ही हमें सद्गुरु की कृपा प्राप्त होती है और निरंकार–दातार पर भी हमारा दृढ़ विश्वास साध संगत में आकर ही होता है।

मन, जो हमें दिन–रात नचाता है, इसको भी चैन–आराम और टिकाव साध–संगत की कृपा से प्राप्त हो सकता है क्योंकि साध संगत में हम मिल–जुलकर हरि–यश करते हैं। 'बाणी' में फरमाया है कि –

सतसंगति कैसी जाणीऐ।। जिथे एको नामु वखाणीऐ।।

साध संगत में आकर ही हमारा मन पावन–पुनीत होता है। इस मन को पावन करने का और कोई साधन नहीं। **नाम के साबुन से ही मन की मलीनता दूर होती है और नाम की गंगा सिर्फ सत्संग में ही बहती है। अगर कोई पूर्ण गुरसिख बनना चाहता है, चाहता है कि वह दास–भावना में रहकर सबकी सेवा करे, उसे सबके आर्शीवाद मिलें, उसके मन में वैर द्वेष का भाव न रहे, उसकी वाणी में मिठास आ जाए, उसके परिवार का भी पार उतारा हो जाए, तो उसे साध संगत की शरण लेनी चाहिये। ये सारे गुण साध संगत से ही हमें प्राप्त हो सकते हैं।** साध संगत 'मां' का रूप होती है। जिस तरह एक बच्चे के पूर्ण विकास के लिए 'मां' कामना करती है, उसके विकास के लिए हर समय और हर तरह उसकी सहायता करती है, इसी तरह साध संगत भी गुरसिख की पालना (पालन–पोषण) करती है। **साध संगत गुरमत की पाठशाला है। इस पाठशाला में नियम से आए बिना कोई गुरसिख पूर्ण गुरसिख की पदवी को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता।'**

माताजी ने तो एक स्थान पर यहां तक फरमाया है कि 'साध संगत की पूरी महिमा तो हमारे धर्म शास्त्र भी नहीं सके, मुझ में कहां हिम्मत है कि इसका वर्णन कर सकूँ। 'बाणी' खुद फ़रमाती है कि –

साध की महिमा बेद न जानिह!!
जेता सुनहि तेता विखिआनिह!!

लिखते–लिखते जब दास ने उपर्युक्त श्लोक को लिखा तो कुछ चौंक–सा गया कि क्या वेद–शास्त्र भी साधु की महिमा नहीं जान सकते? लेकिन तुरन्त दातार की रहमत से याद आया कि वेद आदि शास्त्रों की अन्ततोगत्वा रचना तो सन्त–महात्माओं या ऋषियों–महर्षियों ने ही की है, तो लिखने वाले की महिमा लिखत कैसे पा सकती है। जितना अन्तर अनुभूति और अभिव्यक्ति में होता है उतना ही अन्तर लेखक और उसकी रचना में भी रहेगा। इसमें चौंकाने या हैरान होने की कोई बात नहीं।

सेवा के महत्त्व का बखान करते हुए माता जी फ़रमाते हैं कि –

‘‘साध संगत, निरंकार प्रभु पूर्ण है। इसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं। लेकिन निरंकार की बनाई मूर्तियों को हर चीज़ की ज़रूरत है। इनकी यथाशक्ति ज़रूरतों को पूरा करना, प्रभु निरंकार की प्रसन्नता प्राप्त करने का सबसे आसान साधन है। सन्त महापुरूषों की सेवा की तो महिमा लफ़्ज़ों में ब्यान ही नहीं की जा सकती। महापुरूष फ़रमाते हैं –

कबीर सेवा कउ दुइ भले एकु संतु इकु रामु!!
रामु जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु!!

जिस सन्त–महापुरूष की रहमत से और प्रेरणा से हमें अकाल पुरख की ज्ञान–प्राप्ति का ध्यान आया है और जिस सद्गुरु की कृपा से हमें ज्ञान की प्राप्ति हुई है, उन दोनों का कर्ज़ा हम जन्म–जन्म नहीं उतार सकते। ज्ञान की प्रेरणा देने वाले और ज्ञान पर दृढ़ करने वाले सन्तजनों की सेवा तो हमें करनी ही करनी है, लेकिन साथ ही साथ हमें अपने परिवार और समाज के हर आदमी के काम आना है। महापुरुष हर में हरि का रूप देखते हैं, और सबकी सेवा करके परम पिता की रहमतें प्राप्त करते हैं।

पूज्य माताजी ने सेवा करने वालों को चेतावनी देते हुए फरमाया – ‘‘सेवा करके जो जतलाते हैं या उसका ढिंढोरा पीटते हैं, उन्हें सेवा से मुंह–जबानी वाह–वाह तो मिल जाती है, लेकिन सेवा से जीवन में जो खुशहाली आनी चाहिये, वह उन्हें प्राप्त नहीं होती। दिखावे या किसी फल की इच्छा से की गई सेवा सुख देने की बजाए बन्धन का कारण बन जाती है।

तन–मन–धन की सेवा उत्तम है जिसे सद्गुरु प्रवान (स्वीकार) कर लेता है। सद्गुरु के आशय के अनुसार की गई सेवा हमारा काया–कल्प कर देती है। शहनशाह जी फ़रमाते थे कि सेवा ही सच्ची भक्ति है, लेकिन सेवा पात्र–कुपात्र देखकर करनी चाहिये। पात्र की गई सेवा सुखों की दाता सिद्ध होती है।’’

जब दास माताजी के उपर्युक्त विचारों को लेखनीबद्ध कर रहा था तो माताजी का कर्ममय जीवन याद आ रहा था। दास दिल से महसूस कर रहा था कि माताजी ने जो कुछ कहा है, उसे अपने जीवन में जी के कहा है। सत्संग और सेवा करना तो

आपका जीवन बन चुका है। सेवा में आपने कभी कोई भेदभाव नहीं किया। तन–मन–धन तीनों के द्वारा ऐसा करके आपने संगतों का सदा पथ–प्रदर्शन किया। सुमिरण का अर्थ अगर सचमुच याद करना है तो यह काम तो आपने हर स्वास के साथ किया है, जो भी काम किया निरंकार को साक्षी मानकर किया है। आप अपना सारा जीवन दातार सद्गुरु को अर्पित कर चुकी हैं। गुरुभक्ति और गुरसिखी का जो आदर्श आपने स्थापित किया है, वैसा इतिहास में अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। आपने 1963 तक युगपुरूष बाबा अवतार सिंह जी की एक सच्चे गुरसिख की तरह समर्पित भाव से अपने गुरु के रूप में सेवा की, भले ही दुनियावी रिश्ते में वे आपके ससुर थे।

पूज्य गोपाल सिंह जी 'प्रेमी' ने बताया कि पहले पाकिस्तान में और विभाजन के बाद पहाड़गंज में आई संगतों की सेवा करके माताजी भाभी से राजमाता जी की उच्च पदवी को प्राप्त करने का गौरव प्राप्त कर सकीं। **निरंकारी कालोनी दिल्ली में या समागमों में सेवादल की वर्दी पहनकर माताजी ने सेवा का जो आदर्श रूप प्रस्तुत किया, उसे देखकर सैंकड़ों बहनों ने सेवा क्षेत्र में पदार्पण किया।** आपने पूज्य सद्गुरु बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज के जीवन काल में जहां उनका प्रचार क्षेत्र में कदम से कदम मिलाकर साथ दिया वहां आपने सेवा और सहायता का जो नमूना पेश किया उसका अनुकरण और अनुसरण करने की कामना हर एक दिल में हिलौरे लेने लगती है।

दास को 'मां' के बहुत ही करीब रहने का सौभाग्य मिला है। दास ने देखा है कि जीवन के हर उतार–चढ़ाव में आप एक समान रहती हैं। एम मिनट के लिए यदि आप दुख–सुख का अनुभव करती हैं तो फिर उसे दातार की दात मान कर उन दोनों को सहर्ष स्वीकार करती हैं। दास के सामने आज भी वह भयानक दृश्य, जो सन् 1978 में अमृतसर में देखने को मिला, घूम रहा है। दास आज भी सोचकर हैरान रह जाता है कि माताजी के दामाद को, माताजी के समधी को माताजी के ननदोई को, और अनेकों श्रद्धालु भक्तों को उठाकर जेल में डाल दिया गया और आप के पति बाबा गुरबचन सिंह जी को मुख्य अभियुक्त करार दे दिया गया, तो भी आप हर समय यही कहती सुनी गई कि दातार सब ठीक करेगा। यह जो कुछ हो रहा है दातार के हुक्म में हो रहा है। आपका अपने गुरु पर इतना भरोसा है कि आप मानती हैं कि गुरु की रहमत के होते हुए महापुरूषों का बाल भी बांका नहीं हो सकता। आप कचहरी और जेल में पहुंच कर सदा महापुरूषों को निरंकार–प्रभु के हुक्म में खुशी–खुशी रहने की प्रेरणा देती रहीं।

दास यहां एक बात और कहना चाहता है कि माताजी सदा सतर्क और सावधान रहने की प्रेरणा देते रहते हैं। आपका विश्वास है कि हमें अपने कर्म में कोई कोताही नहीं बरतनी चाहिये। दातार ने जो सोझी हमें बख्शी है, हमने उसका पूरा इस्तेमाल करना है। आप कहा करती हैं कि ब्रह्मज्ञानी बेपरवाह या लापरवाह को नहीं कहते बल्कि 'ज्ञानी होए, सो चेतन होए।' जो दातार की शक्तियों का इस्तेमाल सोच–समझकर करता है, वहीं सच्चा ब्रह्मज्ञानी है। जिन लोगों को निरंकारी मिशन की कुछ भी जानकारी है वे जानते हैं कि माता जी कानपुर और दुर्ग के हत्याकाण्डों के समय बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज के साथ थीं। आपने हर हाल में बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज का साथ दिया। आप आज भी बाबा हरदेव सिंह जी महाराज की आज्ञा में रहकर अपना जीवन–समर्पित भाव से जी रही हैं। माताजी का जीवन एक लम्बे संघर्ष की लम्बी कहानी है।

पूज्य राजमाता जी ने जो प्रवचन अमृतसर काण्ड, कानपुर काण्ड, या दुर्ग काण्ड या दिल्ली काण्ड के तुरन्त बाद दिये, उनके पढ़ने से पता चलता है कि मां सचमुच मां होती है। मां के मातृत्व से ही संसार में हमदर्दी का जज़्बा विद्यमान रहता है, अन्यथा धर्म के प्राण सहानुभूति और समानानुभूति दुनिया से पंख लगाकर उड़ जाएं।

पूज्य राजमाता जी के प्रवचनों में विभिन्न विषयों की गंगा बहती है। दास आपके कुछ प्रवचनों के अंश यहां दे रहा है ताकि हम उनके सभी तरह के विचारों से अवगत होकर अपने जीवन को सही दिशा दे सकें।

पूज्य माताजी जात–पात की दीवारों की चर्चा करते हुए फ़रमाती हैं कि –

''जब हमारा जन्म होता है, तो हमारा कोई मजहब नहीं होता, कोई जाति नहीं होती। ये भावनाएं तो बाद में ही हमारे मन में पैदा की जाती हैं। बचपन में हिन्दू का बच्चा किसी मुसलमान भाई–बहन को पालन–पोषण करने के लिए दे दिया जाए तो वह बच्चा धीरे–धीरे मुसलमान भाईयों जैसा जीवन जीना शुरू कर देगा। इसी तरह यदि किसी मुसलमान परिवार में जन्म लेने वाले बच्चे को कोई हिन्दू पति–पत्नी गोद में ले लें और उसकी परवरिश हिन्दू रीति–रिवाजों के अनुसार होने लगे तो वह हिन्दू बनकर हमारे सामने आएगा।''

इस सच्चाई को स्पष्ट करते हुए पूज्य माताजी ने आगे फ़रमाया कि –

''पशुओं में तो कई तरह की जातियां होती हैं। उनमें से तो हम कह सकते हैं कि इतने ऊंट हैं, इतने घोड़े हैं, इतनी भैसें हैं, लेकिन इन्सान तो केवल इन्सान है। हमारे महापुरुषों ने तो हमें समझाया है कि –

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे।।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे।।

लेकिन हम करते अपने मन की हैं। मैं तो कभी–कभी सोचती हूं कि हमसे पशु भी कई कामों में बहुत आगे हैं। वे अपने पशु–स्वभाव या कर्म को नहीं छोड़ते। जैसे बिच्छु या सांप अपने काटने या डंक मारने के स्वभाव को नहीं छोड़ते, चाहे आप उन्हें कितना भी बचाएं या दूध पिलाएं। लेकिन इन्सान अपने प्यार–प्रीत के स्वभाव को छोड़कर पशुओं से भी ज़्यादा भयानक रूप धारण कर लेता है। मैं तो हैरान हूं कि आज के इन्सान को क्या हो गया है। इन्सान क्लबों, पब्बों में तो इकट्ठे बैठ जाते हैं, होटलों–रेस्टरां में मिलके खा लेते हैं, सिनेमा हालों में भी इकट्ठा बैठकर सिनेमा देख सकते हैं लेकिन पूजा–प्रार्थना के लिए इसने अपने लिए अलग–अलग धर्म स्थान बना रखे हैं, मिलकर बैठने को तैयार नहीं। मैं समझती हूं कि लोग यह सब कुछ अज्ञानता में कर रहे हैं। उन्हें एक पिता की पहचान हो जाए तो उनकी इस भावना का सदा सदा के लिए अन्त हो जाए।''

पूज्य राजमाता जी माया के प्रभावों और उनके निराकरण पर विचार व्यक्त करते हुए फ़रमाती हैं कि – ''संसार की माया अपने असर अवश्य दिखाती है। इसकी मैल से केवल सच्चे गुरसिख जो रोज़ाना सत्संग करते हैं, वही बच पाते हैं, वरना यह माया न बड़ों को छोड़ती है, न छोटों को।

सत्संग में भी कई किस्म के लोग आते हैं। जैसे कुछ पत्थर के स्वभाव वाले, कुछ रुई के स्वभाव वाले और कुछ मिश्री के स्वभाव वाले हैं। आपने देखा है कि पत्थर नदी में स्नान करके पत्थर ही रहता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता, रुई नदी में जाकर भारी तो हो जाती है लेकिन उसमें अपनी हस्ती को मिटा नहीं पाती पर मिश्री अपने आपको पानी में ही घुला–मिला देती है। इसी तरह जो लोग पत्थर–स्वभाव के होते हैं, वे सत्संग में आते हैं, चले जाते हैं, सत्संग का रंग उन पर नहीं चढ़ता। जो रुई स्वभाव के लोग होते हैं, वे सत्संग से कुछ गुण प्राप्त करके ही रह जाते हैं, अपने आपे–भाव को पूरी तरह गंवा नहीं पाते, लेकिन जो मिश्री जैसे स्वभाव के लोग

होते हैं, वे सत्संग के रंग में ऐसे रंगते हैं कि उनकी अपनी कोई हस्ती शेष नहीं रहती। ऐसे सन्त महापुरुषों का फिर माया कुछ नहीं बिगाड़ सकती।''

माता जी ने एक और बात से सावधान करते हुए गुरसिखों को फरमाया –

निरंकार पूरा है, सद्गुरू पूरा है, हमारी साध संगत भी सच्ची है, तो फिर हमारे काम क्यों पूरे नहीं होते? हमारी अरदासें क्यों नहीं सुनी जाती। तो उसका केवल एक ही कारण हो सकता है कि हमारा मन सदा इधर–उधर भटकता रहता है। हमारा विश्वास कमज़ोर है। हमारी अपनी कमजोरी ही हमें पीछे ले जाती है। हमें सदा विश्वास से अपने सद्गुरु द्वारा बताए गए रास्ते पर चलते जाना चाहिये। यदि हम डॉक्टर की दवाई के साथ–साथ परहेज़ भी करें तो हमारी बीमारी बहुत जल्द ख़त्म हो जाती है।

माताजी ने एक और बात की ओर ध्यान दिलाते हुए फ़रमाया कि सद्गुरु के दरबार में नये ज्ञानवान या पुराने ज्ञानवान सब बराबर हैं। गुरु–दरबार में केवल गुरसिख के विश्वास को देखा जाता है। माताजी ने अपनी इस बात को स्पष्ट करने के लिए बाईबल की एक कथा का संकेत देते हुए फ़रमाया कि –

एक मज़दूर को सुबह अंगूर तोड़ने पर लगाया गया, दूसरे को दोपहर को और तीसरे को शाम को। लेकिन मज़दूरी तीनों को बराबर दी गई। इसी तरह **गुरु से ज्ञान किसी ने बीस साल पहले लिया, किसी ने पांच साल पहले लिया या किसी ने कल शाम को प्राप्त किया है, यदि निरंकर उनके दिल में बस गया है तो उन सबकी कद्र गुरु–दरबार में एक जैसी ही होती है।**

पूज्य माताजी ने जीवन में सुख–शान्ति, यश–कीर्ति की प्राप्ति का साधन बताते हुए एक जगह फ़रमाया कि –

सत्गुरु धरती धर्म है।
जेहा कोई बीजे, तेहा फल पाए।

और कहा, हम जो बीज डालते हैं, वह कई गुणा हो कर संसार के सामने आता है। आप संसार के लिए सुख मांगते हैं, आपको सुख मिलते हैं। जो किसी के लिए बुरा मांगते हैं, उन्हें बुरे का फल भोगना पड़ता है। जैसे कहा जाता है कि हम किसी के लिए गड्ढ़ा खोदते हैं तो हमारे लिए कुआं तैयार हो जाता है। इसी तरह यदि हम

संसार के इन्सानों से प्यार करेंगे तो हमारे साथ भी सब प्यार करेंगे। जब हम इन्सानों की पूजा करेंगे तो हमारी भी पूजा होगी। आप अपने गुरु या किसी गुरसिख के सामने एक बार सिर झुकाते हैं तो आप देखते हैं कि उसी समय हज़ारों लोग आपके चरणों को छूने लगते हैं। इसलिए हमने बच्चे-बच्चे का सत्कार करना है ताकि हमारा सत्कार भी बच्चा-बच्चा करने लगे और हम अपना जीवन सुख और चैन से जी सकें।''

महात्माओं की संगति से बच्चों का मनोबल कितना बढ़ जाता है, इसका वर्णन माता जी ने एक वृतान्त का ज़िक्र करते हुए कुछ इस प्रकार किया कि -

''हम एक बार टूर कर रहे थे। एक शहर में एक परिवार अपने बच्चे को साथ लेकर आया हुआ था। जब संगत के बाद नमस्कार करने के लिए वे लोग बाबा जी के कमरे में आए तो माता-पिता अपने बच्चे की ओर इशारा करते हुए कहने लगे, 'बाबा जी, यह बच्चा बहुत शरारतें करता है।' मैंने बीच में ही टोकते हुए पूछा, क्यों बेटा, तू शरारतें करता है?' वह 8-10 साल का बच्चा बड़ी नम्रता से बोला, 'नहीं माता जी, दास तो अपनी समझ में कोई शरारत नहीं करता।'

उसकी बोली में सन्तों जैसी मिठास देख कर मैं तो चुप हो गई लेकिन उसके माता-पिता हंसते-हंसते बाबा जी से कहने लगे, 'बाबा जी इसकी शादी ऐसी लड़की से करनी है जो इसे सीधा करके रखे', तो वह लड़का झट से बोला, 'दास उस लड़की को बाबा जी से ज्ञान दिलवा देगा।' और वहां खड़े सब लोग खिलखिलाकर हंस पड़े। बात हंसी खुशी में खत्म हो गयी। लेकिन हम ज़रा सोचें तो हमें खुशी होगी कि हमारे बच्चों को ज्ञान और सद्गुरु की रहमतों पर कितना फ़ख़र और विश्वास है।''

अहंकार मनुष्य के पतन का कारण बनता है, इस तथ्य से अवगत कराते हुए माता जी फ़रमाती है -

''संसार में यदि किसी के पास चार पैसे आ जाते हैं, तो वह उसी के अहम् में आकर आदमी को आदमी नहीं समझता। वह कह उठता है कि पांच-दस की बात तो क्या मैं तो सारा शहर की खरीद सकता हूँ। तन में थोड़ा बल दूसरों से अधिक आ जाए तो आने-जाने वालों से टकराता फिरता है। उसे भी यही कहते सुनते हैं कि मैं चाहूं तो 50-100 को अपने आगे लगा लूं। इसी तरह अपने इल्म पर भी बड़ा घमण्ड करता है। लेकिन उसे याद नहीं रहता कि -

बड़े–बड़े हंकारिया नानक गरब गले

अहंकार में आया हुआ आदमी पागल से भी ज्यादा खतरनाक रूप धारण कर लेता है। लेकिन जिन चीज़ों पर यह मान (अभिमान) करता है, वे भी उसका सदा साथ नहीं देती। आज शरीर में बल है, कल थोड़ा–सा रोग लगे तो आदमी एक गिलास पानी उठाने में भी अपने आप को लाचार पाता है। जिसके पास आज महल–माड़ियां हैं, वह कल को छोड़नी पड़ती हैं। इसी प्रकार ज़रा–सी दिमाग की कोई नाड़ी हिल जाए तो आदमी की सब सूझ–बूझ चली जाती हैं बच्चे उसे कंकर–पत्थर मार कर घायल कर देते हैं। इसीलिए 'बाणी' फ़रमाती है कि–

जो जाने मैं जोबनवंतु, सो होवत बिस्टा का जंतु।

या ऐसे भी कहा है कि

सभ ते आप जानै बलवंतु। खिन महि होइ जाए भसमंतु।।

जिनके हृदय में नम्रता होती है, दास भावना होती है, उनका ही संसार मैं मुख उजला (उज्जवल) होता है। पर हमें 'दास' कर्म में बनके दिखाना है, केवल जुबान से दास–दास नहीं कते रहना। ऐसा करने से न हमें सुख मिलेगा और न ही हम किसी का भला या उपकार कर सकेंगे।''

माता जी ने अपनी इस भावना की पुष्टि एक उदाहरण देकर करते हुए फरमाया–
''एक बार हम एक नगर में संगत करने गए। एक 18–20 वर्ष की लड़की की कहानी हमें वहां के महापुरूषों ने सुनाई कि माता जी यहां एक लड़की है, वह अपने आपको हर वाक्य के आरम्भ में 'दासी' कहती है लेकिन दासी कहने के बाद जो कुछ वह कहती है, उसे सुन कर चंगा–भला आदमी सोच में पड़ जाता है कि यह दासी है या सारे मुहल्ले की मासी है। उन्होंने बताया कि वह गली में खड़ी होकर कहना शुरू कर देती है कि दासी को आपने समझ क्या रखा है, दासी तो किसी को गली में खांसने नहीं देती। दासी के सामने कोई बात तो करके देखें, दासी उसको ऐसा मुंह तोड़ जवाब दे कि जिससे उसकी बोलती बन्द हो जाए। कहने का भाव यह है कि हमने इस तरह का दास नहीं बनना बल्कि महापुरुषों के इस महावाक (वाक्य) के अनुसार अपनी अवस्था बनानी है कि –

करि किरपा जिस कै हिरदै गरीबी बसावै।।
नानक ईहा मुकतु आगै सुखु पावै।।''

निरंकारी भक्तों को उनके कर्तव्यों के प्रति सचेत करते हुए माता जी फरमाते हैं कि – ''जुबान से कहने की बजाए अमल द्वारा ज़्यादा प्रेरणा मिलती है। अगर हम खुद किसी सेवा में जुट जाएं तो हमारे पास खड़े सन्त महापुरुष भी सेवा से पीछे नहीं रहेंगे। मैं तो सोचती हूँ, **जब हमें सच्चाई का ज्ञान नहीं था, तो हम भाग–भाग कर लंगर की सेवा, मन्दिर गुरुद्वारे में जाकर सफ़ाई की सेवा करके खुश होते थे, हालांकि हमें आज उससे भी ज़्यादा उत्साह से अपने सत्संग भवनों की पवित्रता और सफ़ाई का ध्यान रखना चाहिये क्योंकि यहां बैठ कर हमने हरि–यश करना होता है। भवन में रहने वालों का भी फ़र्ज़ बनता है कि वे भवन को अपने घर से भी ज्यादा साफ़ रखने की कोशिश करें। इसी तरह हमें अपने घरों को भी साफ़–सुथरा रखना है। आलसी आदमी का नाम महापुरूष नहीं बल्कि जो उदमी (उद्यमी) व्यक्ति है वहीं सच्चा भक्त बन सकता है क्योंकि सेवा–सत्संग और सुमिरण करके अपने सद्गुरु निरंकार की प्रसन्नता प्राप्त करा सकता है। दातार ने यह जो तन–मन–धन दिया है, इनका ध्यान रखना हमारा फ़र्ज बनता है। तन रोगी न हो, मन मैला न हो और धन फ़िज़ूल कामों पर खर्च न हो,** ऐसा सोचना या करना हमारा सबसे परम कर्तव्य है, क्योंकि ये सब हमारे पास निरंकार की अमानत है। अपनी हो तो हम कभी भी कहीं भी फेंक दें लेकिन अमानत की चीज़ को सम्भाल कर रखना बहुत जरूरी है। हमें अमानत चीज़ को ज्यों का त्यों वापिस करना होता है।

हमने इसी तरह, हर समय सद्गुरु और मिशन की मर्यादाओं का ध्यान रखना है। हमारे दिल में सदा यह बात रहनी चाहिये कि हमारे से ऐसा कोई काम न हो, जिसके कारण मेरे गुरु या मिशन की तरफ़ ऊंगली उठे। हमारे बोल भी ऐसे होने चाहियें जिनसे किसी को ठेस न पहुंचे। कहा भी है –

ऐसी बाणी बोलिये, मन का आपा खोय।।
औरन को शीतल करै, आपुहिं शीतल होय।।''

पूज्य राजमाता जी ने सादा खाना और सादा जीवन पर एक नए दृष्टिकोण से विचार व्यक्त करते हुए फ़रमाया है कि – ''सेवा के लिए तन–मन–धन की ज़रूरत होती है। तन को निरोग रखने के लिए खाना खाया जाता है। खाना जितना सादा और उचित

मात्रा में होगा और जलवायु और शरीर के अनुकूल होगा, उतना ही हमारा शरीर हृष्ट–पुष्ट बनेगा और हम पूरी शक्ति से तन द्वारा सेवा कर सकेंगे। इतना ही नहीं, इस तरह से जो माया बचेगी वह भी सेवा में लगाई जा सकेगी। मन में सदा चुस्ती और फुर्ती बनेगी। हर वक्त जुबान के गुलाम होकर हर चीज़ नहीं खाते रहना चाहिये। ज़्यादा खाने वाले बदहज़मी का शिकार होकर गैस के ऐसे रोगी बनते हैं कि उनका मन काम में ही नहीं लगता, सेवा करने की बात तो दूर रही। हमारा रहन–सहन भी बड़ा सादा होना चाहिये। धन को फ़िज़ूल की चीज़ों पर खर्च करने की बजाए सेवा में लगाना चाहिये। मेरा मतलब यह नहीं कि हम खाना या पहनना ही बन्द कर दें या कंजूसों की तरह ज़रूरत की चीज़ों पर धन न खर्च करें। मेरा कहने का भाव इतना सा ही है कि अच्छी तरह तन ढकने के लिए कपड़ा होन चाहिये और वह मौसम तथा समाज की मर्यादाओं के अनुसार होना चाहिये। खाना भी, जो हमारी सेहत के लिए जरूरी है, अवश्य उस पर हमें खर्च करना चाहिये। मैं तो केवल फ़िज़ूल खर्ची और फैशन की उस दौड़ के बारे में कह रही हूँ जो हमें कर्ज़े के बोझ के नीचे दबाते जा रहे हैं। हम सेवा करने से और सत्संग से भी मुख मोड़ बैठते हैं।''

दास पूज्य माता जी के कुछ उन शब्दों द्वारा इस विषय का उपसंहार करना चाहता है, जिन्हें वे अक्सर अपने प्रवचनों में दोहराते हैं। आप फ़रमाती हैं कि –

''अन्धा यदि किसी कुएं में गिर जाए तो लोग उस पर तरस खाते हैं। उससे पूरी हमदर्दी जताते हैं परन्तु एक आंखों वाला जिसे दिन के सूरज की तरह सब कुछ दिखाई दे रहा है, अगर वह गिर जाए तो उसे हर तरफ से लाहनत ही मिलती है। उसकी इस ग़लती को कोई मुआफ़ करने को तैयार नहीं होगा। इस तरह संसार के जो लोग निरंकार को दूर किन्हीं ठिकानों पर, गुफाओं में या आसमानों पर मानते हैं, उनकी ग़लती तो शायद मुआफ़ हो जाए क्योंकि उन्हें ज्ञान नहीं कि परमात्मा उनकी हर हरकत को हर समय पर देख रहा है, पर उन गुरसिखों के बख्शे जाने की सम्भावना नहीं जो निरंकार को अंग–संग जान कर भी ग़लत काम करते हैं।''

माता जी ने अपनी इस बात को एक और ढंग से भी हमारे हृदय में बिठाते हुए फरमाया है कि – ''जैसे ट्रैफिक के कुछ रूल (नियम) होते हैं। अगर कोई आदमी यह कहे कि मैं तो कई ट्रकों और वाहनों का मालिक हूं। मैं चाहूं तो पैदल चलने वालों की लाईन को छोड़ कर ट्रकों वाली लईन में चलना शुरू कर दें तो आप ही सोचिये अगर वह सचमुच ट्रकों वाली लाइन में पैदल चलना शुरू कर दे तो उसका किसी वक्त भी ऐक्सीडेण्ट हो सकता है और उसका जानी नुकसान भी हो सकता है।

इसी तरह गुरमत के कुछ अपने असूल हैं, इसकी भी अपनी कुछ मर्यादाएं हैं। अगर कोई गुरसिख इनको जाने–अनजाने तोड़ता है तो उसका फल भोगने के लिए तैयार रहना चाहिये।''

माता जी ने आगे फ़रमाया है कि – ''वैसे तो संसार के लिए भी यह असूल अपनाने योग्य है, लेकिन गुरसिखों को तो अवश्य यह याद रखना चाहिये कि – संसार में दो हिन्दू लड़ते हैं तो लोग ये नहीं कहेंगे कि दो हिन्दू लड़ रहे हैं या दो सिख बहन–भाई आपस में किसी बात पर एक दूसरे की मारपीट कर देते हैं तो यह कोई नहीं कहता कि यह दो सिख लड़ रहे हैं। हर कोई कहता है कि दो बहन–भाई आपस में किसी बात पर एक दूसरे को पीट रहे हैं। लेकिन जब कोई दो निरंकारी बहनों या बहन–भाईयों मे आपस में थोड़ी–सी टक्कर हो जाए तो लोग झट कह उठते है कि देखो जी, दो निरंकारी लड़ रहे हैं। इसका अर्थ स्पष्ट है कि लोग भक्तों–महापुरुषों से बड़ी उम्मीदें लगाए होते हैं। आप जानते है कि 'गन्दा कुत्ता खसमें गाल' भाव गलती हमसे होती है, नाम गुरु के लग जाती है। हमें गर्व है कि हम गपने सद्गुरु की कृपा से ऐसा सुन्दर, पवित्र जीवन जी रहे हैं। आगे के लिए भी यही अरदास है कि हम अपने गुरु के आशय के अनुसार ही अपना जीवन गुज़ार सकें।''

जब दास उपर्युक्त सारी सामग्री इकट्ठा करके लेखनीबद्ध कर चुका तो उस समय दास के सामने एक तरफ माता जी के विचार थे, और दूसरी तरफ दास का इस मिशन को करीब रह कर देखने का निजी अनुभव। दास सोच रहा था कि दास में इस मिशन में आकर गृहस्थ की जिस पवित्रता, समाज की जिस महानता और जीवन की जिस नैतिकता को जी कर देखा है, उसी की गंगा मातृशक्ति के मुख से प्रवाहित हुई है।

प्रवचन

1

साध संगत, हम रोज पढ़ते हैं कि धर्म की धरती में बीज डाला हुआ हमेशा प्रफुल्लित होता है – ''सद्गुरु धरती धर्म है जिस विच जेहा कोय बीजे तेहा फल पाये।'' सेवा का बीज हम डालते हैं तो सेवा होती है, प्यार का बीज डालते हैं तो सभी हमसे प्यार करते हैं। दूसरी तरफ देखा जाये यदि हम किसी से नफ़रत करते हैं तो हमारे साथ भी हर कोई नफ़रत के साथ पेश आता है क्योंकि हमने बीज ही ऐसा डाला। यदि हम सबका सत्कार करें तो हमारा भी सत्कार होगा, मीठी बोली बोलेंगे तो हमें भी बदले में मीठे बोल सुनने को मिलेंगे। यही तो सन्तों का एक–दूसरे के साथ लेन–देन होता है। सबको अच्छी तरह पता है कि मैं जैसा बीज डालूंगा, जैसे बोल बोलूंगा,

मुझे वही मिलेगा। यह कोई बार-बार जताने वाली बातें नहीं हैं। हमारे घरों में बच्चे होते हैं। यदि हम उनको प्यार से बुलाएं तो वो भी प्यार से जवाब देंगे और हम यदि गुस्से में बोलेंगे तो जवाब भी गुस्से में ही आयेगा। हमें ये उम्मीद कभी नहीं रखनी चाहिए कि हम तो बच्चों को हर समय डांटते रहें और वे आगे से हमें प्यार करें। उनका जवाब भी हमारे जैसा ही होगा। हमने यह घरों में देखा है। हम सभी गृहस्थी बैठे हैं और ये बातें कभी किसी से छुपी नहीं हैं। सन्तों-महापुरुषों ने इसी बात को सामने रखा है। यदि कोई सद्गुरु की महिमा का जिक्र करता है तो सद्गुरु भी उसका नाम रोशन करता है।

एक बार शिमला में सत्संग हो रहा था। सद्गुरु बाबा गुरबचन सिंह जी महाराज और मैं स्टैज पर बैठे थे। एक नए सज्जन आए और उन्होंने प्रश्न किया - बाबा नानक जी ने कड़वे रीठे मीठे कर दिए थे लेकिन आपके गुरु ने क्या करके दिखाया है? हमने तो अभी कुछ कहा ही नहीं था कि सत्संग में बैठे हुए एक भक्त खड़े हो गये और कहने लगे कि श्री गुरु नानकदेव जी महाराज के समय तो मै नहीं था, इसलिए मैंने देखा भी नहीं कि वो कैसी मिठास थी लेकिन आज मैं आपके सामने ढाई मन का रीठा खड़ा हुआ हूं जिसको मेरे सद्गुरु ने मीठा कर दिया है। मेरे जीवन में इतनी कड़वाहट थी कि मैं गाली के बिना किसी से बात भी नहीं करता था, मेरे दरवाजे के आगे से कोई भी मूंछ ऊंची करके नहीं गुजर सकता था। आज आप जाकर मेरे पड़ौसियों को पूछ सकते हो। इस सद्गुरु ने मेरे मन की भावना को बिल्कुल बदल दिया है और मैं दूसरों को देखकर खुशी महसूस करता हूं, मुझे बिल्कुल यह भी आभास नहीं हो रहा है कि यह काया कैसे पलट गई है।

साध संगत, जब जीवन में पूर्ण सत्गुरु आता है, वह नाम का दान देता है तो यह हमारे जीवन को बदल देता है। यह तो हम अपने अन्दर झांककर सभी देख सकते हैं कि ब्रह्मज्ञान से पूर्व हमारा जीवन कैसा था और अब कैसा बन गया है। पहले हम कैसे उठते-बैठते थे, खाते-पीते थे और अब सद्गुरु की कृपा से हमारे जीवन में क्या तबदीली आयी है। कई बार अपने आपको पता भी नहीं चलता लेकिन दूसरे देखने वाले अवश्य कहते हैं कि हमने तुझे पहले भी देखा था लेकिन आज इस बदलाव को भी देख रहे है। सन्त-महात्मा जब भी सद्गुरु के ऊपर पूर्ण विश्वास करते हैं, पल-पल सद्गुरु के शुक्र गुज़ार होते हैं और कहते हैं कि तेरी बड़ी रहमत है तब ही इनका जीवन बदल जाता है।

साध–संगत, जब मैं बच्चों को, नौजवानों को, बच्चियों को सत्संग में देखती हूं तो हृदय में बहुत खुशी होती है। बाबा जी तो संगत में ऐसे बच्चों की मिसाले भी देते हैं जो गुरु के साथ जुड़े हुए हैं। अभी–अभी आपने बच्चों से 'अवतार बाणी' का शब्द सुना, हम बुजुर्ग लोग तो यह समझते हैं कि मेरे जैसा तो कोई बोल ही नहीं सकता, पर जब इन बच्चों को सुना तो ऐसा लगा कि हम क्या बोल सकते हैं इन बच्चों से बढकर? यह प्रभु जिसके भी हृदय में बैठकर जो करवाना चाहे करवा सकता है। यह कोई कहानी नहीं है। हम भी गूंगे थे जो चार आदमियों में बैठकर बात भी नहीं कर सकते थे। मन में यही होता था कि यदि किसी ने कोई सवाल कर दिया तो जवाब नहीं दे पाएंगे, इसलिए अपने आपको दूसरों से छुपाया करते थे। लेकिन गुरु ने ज्ञान का छाता सिर पर रख दिया और जो चाहा बुलवाया। भाव जो सद्गुरु बुलवाये, वही बोला जाता है और यह जिस भी घट बैठ जाये उसके वारे–न्यारे हो जाते हैं। उसकी सोच ऐसी हो जाती है जिसमें सबके भले की कामना होती है, चाहे कोई अपना हो या बेगाना। वैसे भी सन्तों के लिए कोई बेगाना होता ही नहीं, सारे अपने होते हैं। जब ये सबको अपना समझ लेते हैं तो इनसे कोई भी बात ऐसी नहीं होती जिसमें काहलगी (गुस्सा) हो, क्योंकि जब हम ठंडे हृदय से बात करेंगे तो बात भी ठंडक देने वाली होगी और उससे अपने आपको भी चैन मिलेगा। जैसा कहा है – ''ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय, औरन को शीतल करे आप भी शीतल होय।'' अगर अपना हृदय ठंडा है तो इन्सान दूसरों को भी ठंछक देगा।

साध संगत, इन्सान को यह सोचना है कि दुनिया में तू केवल प्रभु प्राप्ति के लिए आया है लेकिन यहां आकर दुनिया की चमक–दमक, रंग–रलियों में मस्त होकर यह भूल ही गया कि मैं तो केवल प्रभु की बन्दगी के लिए ही आया था। इसलिए तो कहा है कि – ''बन्दा नाम जपण नूं आया, माया ने मार लिया'' भाव कि माया का इतना जाल बिछ गया कि इन्सान असल बात को भूल ही गया कि जब मैं मां के गर्भ में उलटा लटका हुआ था, मेरा सिर नीचे था, पैर ऊपर थे तो मैंने प्रभु से कुछ वायदा किया था, लेकिन वह इकरार भूल गया क्योंकि बाहर आ गया। पैर नीचे और सिर ऊपर हो गया और जमीन से दो–दो फुट ऊपर चलना शुरू कर दिया कि मेरे जैसा तो कोई बना ही नहीं है। अपने अभिमान के कारण इन्सान अपनी वास्तविकता को ही भूल गया। इसीलिए बार–बार यह धोखा खा रहा है, जन्म और मृत्यु के चक्कर में बार–बार आ रहा है।

साध संगत, आपने ध्रुव औा प्रहलाद का नाम सुना है। चाहे दुनिया ने कितना भी दुख दिया लेकिन 'जल भी राम, थल भी राम, है भी राम होसी भी राम, कभी नहीं

भूले। इसलिए आज उनका नाम श्रद्धा से लिया जाता है। मैं सोचती हूं कि पहले तो सिर्फ एक या दो नाम ही आये हैं, लेकिन अब जब छोटे–छोटे बच्चे तोतली जुबान में स्टेज पर खड़े होकर बोलते हैं, बच्चों की संगत होती है, समागम होते हैं, जिस स्टेज पर मैं बैठी हूं या आप बैठते हो, इसी स्टेज पर जब बच्चे बैठते हैं तो उन्हें भी नमस्कार होती है जब वह तोतली जुबान में विचार प्रकट करते हैं तो हृदय दंग रह जाता है कि कैसे आज बच्चा–बच्चा ध्रुव और प्रहलाद की शिक्षा को धारण किए हुए है। दातार कृपा करे, इनको शक्ति प्रदान करें, नित्यप्रति सत्संग में आते रहें और सेवा भी बढ़–चढ़ कर करें। दातार कृपा करे कि इस मिशन की आवाज को यह नौजवान बच्चे घर–घर तक पहुंचायें और हम बड़े इनकी इस भावना का सत्कार भी करें और इसे बढ़ाएं भी।

2

साध संगत, आप सन्तों के भक्ति से भरे उत्तम विचार, सद्गुरु के प्रति विश्वास, श्रद्धा–भक्ति व प्रेम भरे वचनों का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। जब सद्गुरु की महान कृपा होती है तब ही ऐसे सन्तों के दर्शन होते हैं और आनन्द प्राप्त होता है। वरना संसार में तो हमें नेकी से हटाकर बदी के तरफ लगाने वाले, निन्दा–चुगली की तरफ लगाने वाले इन्सानों की कोई कमी नहीं है। कमी है तो उन भले लोगों की है, जो हमें नेकी के साथ जोड़ते हैं। आप देखते हैं कि सोने और पीतल का रंग एक जैसा ही होता है लेकिन पीतल के गहनों की दुकान पर बहुत भीड़ होती है जबकि सोने की दुकान पर कोई–कोई ही पहुंचता है। इसी तरह सच का ग्राहक भी कोई विरला–विरला ही होता है। जैसे महात्माओं ने पहले भी कहा है –

हैंन विरले नाहिं घने, फैल फक्कड़ संसार

भाव यह है कि सन्त महात्मा आटे में लूण (नमक) के समान विरले ही होते हैं लेकिन वे सच के साथ इस दृढ़ता से जुड़े होते हैं कि किसी भी अवस्था में अपने आपको डूलायमान नहीं होने देते। ये जानते हैं कि झूठ चाहे कितना भी बलवान हो, अन्त में पलड़ा सच का ही भारी होता है क्योंकि –

कूड़ निखुटे नानका ओड़कि सचि रही।।

भाव, सत्य हमेशा–हमेशा के लिए कायम रहता है। आपने कई बार सुना होगा कि किसी भूखे को किसी ने पूछा कि दो और दो कितने होते हैं तो उसने उत्तर दिया कि

दो और दो चार रोटियां। चाहे उसने इसको रोटी के साथ जोड़ दिया लेकिन सत्य फिर भी सत्य रहा।

साध संगत, के दर पर प्यार और नम्रता का सौदा ही बिकता है। यहां अहंकार का सौदा नहीं है। जो जितना विनम्र भाव में रहता है, उतना ही औरों के दिल जीत लेता है। इसके विपरीत अहंकार में रहने वाला कभी भी किसी के दिल को नहीं जीत सकता। जो दो–चार खुदगर्ज़ लोग उसके नज़दीक रहने वाले होते हैं, उनकी बात और है लेकिन वह हर किसी के दिल को नहीं जीत सकता। सभी के दिलों को जीतने की कला उसी को मिलती है जिसने सद्गुरु की शिक्षा को धारण किया हो। केवल सद्गुरु की नज़र में सारे विश्व के इन्सान एक जैसे होते हैं वरना संसार ने तो इन्सानों को बांट रखा है। किसी को हिन्दू कह दिया, किसी को मुसलमान, किसी को सिख, और किसी को ईसाई। संसार ने हमें इस तरह बांट दिया जैसे भेड़ों वाले किसी के ऊपर लाल, नीला, पीला, हरा रंग लगा देते हैं ताकि वे दूसरों की भेड़ों में न मिल जाएं।

साध संगत, प्रभु ने तो हमें दुनिया में केवल इन्सान बनाकर भेजा था लेकिन यहां पर हमें इस तरह बांट दिया गया कि हम एक–दूसरे को देखना भी पसंद नहीं करते। जब हमारी आंख में इस तरह वैर और नफरत की मैल आ जाती है तो उस समय फिर कोई महात्मा हमारे जीवन में प्रवेश करते हैं जो इस बात की समझ देते हैं कि इन्सान, तू दूनिया में इन्सान बनके आया है तो इन्सान बनके जी। वे हमें इस प्रभू निरंकार के दीदार करवाकर यह बात समझाते हैं कि –

हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, आपस में हैं भाई–भाई।

फिर यह भाई–भाई वाली बात केवल कही ही नहीं जाती बल्कि मानी भी जाती है। जब ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है, प्रभु की जानकारी मिल जाती है और पता चल जाता है कि हम सभी एक प्रभु की सन्तान हैं तो फिर वहां भाई–भाई कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती, खुद–ब–खुद, भाई–भाई वाला आचरण बन जाता है।

साध संगत, इसमें कोई शक नही कि आज संसार में भक्ति तो बहुत हो रही है, हर कोई अपने ढंग से भक्ति भी कर रहा है, प्रीत–प्यार भी कर रहा है लेकिन वह प्रीत ऐसी है जैसे हम बचपन में पढ़ा करते थे –'ऐसी प्रीत कर ले, जैसी चन्द ते चकोर दी।' अब समझ में आ रहा है कि चांद ने तो प्रीत की नहीं, चकोर ही चांद की

तरफ सारी रात देखता रहता है और दिन निकल आता है। इसी प्रकार भंवरा भी बड़े शौक के साथ फूल की तरफ आता है लेकिन फूल उसे दबोचकर खत्म कर देता हैं इसी तरह शमा और परवाने का प्रेम है। हम जानते हैं कि शमा जलती है तो परवाना प्रीत के साथ उसकी तरफ भागकर आता है लेकिन शमा उसे जलाकर राख कर देती है। भाव, ये जितने भी प्रेम दुनिया में देखने को मिलते हैं, सब एकरतफ़ा हैं। केवल गुरसिख और सद्गुरु का प्रेम ही दोतरफ़ा होता है। गुरसिख यदि एक कदम सद्गुरु की तरफ बढ़ाता है तो सद्गुरु कोटि कदम आगे होकर गुरसिख का हाथ पकड़ लेते हैं। यही पूर्ण सद्गुरु की निशानी होती है।

साध संगत, जो गुरु हमें निन्दा, वैर, विरोध और घृणा सिखायें, वे गुरु नहीं हो सकते। गुरु तो हर युग में जन-जन से प्यार, हरएक का हित करने की शिक्षा देते आये हैं। उन्होंने सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलयुग, सब में हमें एकता की शिक्षा दी, हमें भक्ति ही सिखाई और हमारे अन्दर से नफ़रत और बुरी भावना दूर की। जैसे किसी बोतल में ज़हर भरी हो। हम उसमें से ज़हर को निकाल कर उसकी जगह उसमें शर्बत भी दें तो कोई अन्जाने में भी यदि उसको पी लेगा तो मरेगा नहीं। इसमें कोई शक नहीं कि बोतल के ऊपर तो ज़हर ही लिखा हुआ है लेकिन उसके अन्दर शर्बत है। इसी तरह हमारे ये शरीर बोतलों की तरह हैं। गुरु ने इनको बदला नहीं लेकिन इनके अन्दर से नफरत, ईर्ष्या, द्वेष जैसी ज़हर निकालकर ज्ञान रूपी अमृत भर दिया है, रोशनी करके मन में से अन्धेरे को निकाल दिया है। आप जानते हैं कि रोशनी में कभी भी किसी को ठोकर नहीं लगती लेकिन अंधेरे में तो ठोकरें ही ठोकरें हैं। महात्मा तो युगों-युगों से रोशनी बांटते आए हैं, और अंधेरा मिटाते आए हैं। लेकिन यह अन्धेरा उसी के लिये मिटता है, जिसका विश्वास, सिदक और भरोसा पूर्ण होता है। आज हम उन्हीं के नाम श्रद्धा से लेते हैं जिन्होंने इस परम पिता परमात्मा को जानकर इस पर पूर्ण विश्वास और भरोसा रखा। जैसे 'बेबे नानकी' ने बाबा नानक को पहचाना, 'बाला' और 'मर्दाना' ने पहचाना। इसलिए आज उनके नाम भी गुरु के साथ लिये जा रहे हैं। इसी प्रकार भगवान श्री राम जी के साथ हनुमान और शबरी का नाम और भगवान श्री कृष्णा जी के साथ सुदामा और विदुर का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जा रहा है।

साध संगत, सद्गुरु देह का नाम नहीं है बल्कि 'शब्द गुरु सुरति धुन चेला' गुरु का जो शब्द होता है, वही ज्ञान होता है। शरीर की पूजा केवल इसलिए होती है क्योंकि उसके द्वारा हमें ज्ञान होता है। जैसे हम किसी से कोई विद्या सीखते हैं तो वह हमें कभी किसी सड़क पर ही क्यों न मिल जाए उस समय हमारे साथ दो-चार दोस्त-मित्र

भी क्यों न हों, तब भी हमारा सिर उसके सामने अपने आप झुक जायेगा और दूसरों के पूछने पर हम यह बताएंगे कि ये मेरे उस्ताद हैं, मैंने इनसे शिक्षा प्राप्त की है। इसी तरह भक्त का सिर भी अपने सद्गुरु के आगे स्वयं ही झुक जाता है क्योंकि गुरु से ही हमें यह समझ प्राप्त होती है कि परमात्मा हमारे अंग संग है, हमारे नज़दीक है। इसीलिए सन्त महात्मा जब भीमिल–जुलकर बैठते हैं, गुरु की ही महिमा करते हैं, गुरु का ही यश गाते हैं और कहते हैं कि – 'जैसा सद्गुरु सुणीदा तैसो ही मैं डीठ, बिछड़ियां मेले प्रभु हरि दरगाह का बेसीठ।'

साध संगत, हम जन्म–जन्मांतरों से इस परमपिता परमात्मा से बिछुड़े हुए थे लेकिन इस सद्गुरु ने हमारी आत्मा को परमात्मा से मिला दिया है। अब हमने अपना विश्वास, सिदक अपने गुरु के ऊपर पक्का रखना है चाहे जिन्दगी में कितने भी उतार–चढ़ाव आते रहें। यह तो आप देखते ही हैं कि जीवन में कभी दिन होता है, कभी रात होती है, कभी सुख होता है, कभी दुख होता है, कभी ग़मी होती है, कभी खुशी होती है, कभी दौलत आ जाती है, कभी चली जाती है, कभी बच्चे आज्ञाकारी होते हैं और कभी कहा नहीं मानते। यह जीवन तो ऐसे ही चलता रहता है लेकिन जो भक्त होते हैं वे हर समय मन में ऐसे भाव रखते हैं कि हे प्रभु, जो कुछ भी हो रहा है, तेरे हुक्म के अन्दर हो रहा है।

साध संगत, हम अक्सर यह कहते हैं कि प्रभु के हुक्म के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। हम पढ़ते भी हैं – ''करन करावण आपे आप, सदा सदा नानक हर जाप'' इसका भाव यही है कि कर्त्ता केवल प्रभु है, हमारा काम केवल इसको याद करना है, इसकी बन्दगी करते रहना है। बन्दगी करने से मुश्किल से मुश्किल काम भी आसान होते चल जाते हैं, इसलिए तो कहा कि – 'तुध चित्त आवे महाआनन्दा जिस विसरे सो मरजाई' अगर यही बात हमारी समझ में आ जाये तो कोई भी घटना हमें तंग नहीं करेगी। जिसको हुक्म में रहना आ जाता है, जो हुक्मी बंदा बन जाता है वह तो फिर यही मानता है कि – 'घट–घट के अन्तर की जानत, भले–बुरे की पीर पछानत।'

साध संगत, सद्गुरु तो अन्तर्यामी होता है और हमारे अन्दर की हर बात अच्छी तरह जानता हैं। लेंकिन जब हम अपना ध्यान छोड़कर दूसरे के अन्तर्यामी बनने की कोशिश करते हैं तभी धोखा खा जाते हैं। केवल सद्गुरु ही बख्शिन्द होता है जो अन्तर्यामी होते हुए, सब कुछ जानते हुए, हमारे अवगुण पता लग जाने पर भी हमें बख्श देता है और हम पर ज़ाहिर भी नहीं होने देता। एक हम हैं जिन्हें किसी की

कोई बात पता चल जाये तो तब तक खाना भी हज़म नहीं होता जब तक पांच–दस को सुना न लें।

साध संगत, हम सभी अरदास–प्रार्थना करें कि हे दातार! कृपा करना हमारे हृदय को विशालता प्रदान करना, हमें नम्रता प्रदान करना, कभी भी–मन में अहंकार न आये क्योंकि हम जानते हैं कि घास जो जमीन के साथि लगी होती है, तेज़ आंधी–तूफान के आने पर भी वैसी की वैसी रहती है पर बड़े–बड़े पेड़ जड़ से ही उखड़ जाते हैं। अन्त में यही अरदास प्रार्थना है कि हम सभी विनम्र भाव से गुरु की शिक्षा को धारण करते हुए अपना जीवन व्यतीत करें।

3

साध संगत, अभी तक आप सन्तों के प्रवचनों का आनन्द प्राप्त कर रहे थे। इन्होंने हर इन्सान के भले की कामना की है, और दातार से यही मांगा है कि हमें कोई भी दूसरा नज़र न आये, क्योंकि सारे इन्सान तेरे बनाए हुए हैं, इन सबसे प्यार–मुहब्बत से बैठना–उठना हो। ऐसी मांग केवल गुरसिख ही कर सकता है। संसार में तो हर कोई अपने भले के लिए कामना करता है। हर कोई यही चाहता है कि केवल मेरा ही भला हो, किसी पड़ौसी का नहीं। इस युग में तो अपने परिवार के लिए भी भला नहीं मांगा जाता। आप सब देखते ही हैं कि घरों में तू–तू, मैं–मैं होने पर कोर्ट–कचहरी में बाप–बेटा आमने–सामने खड़े हो जाते हैं। बाप, बेटे के बारे में कुछ बोलता है, बेटा बाप के बारे में कुछ बोलता है। इसी तरह एक तरफ माता खड़ी होती है और दूसरी तरफ बेटी खड़ी होती है, वो एक–दूसरे को देखना नहीं चाहती। आप खुद ही सोचिए कि जो अपने परिवार के भले की कामना नहीं कर सकते वो दूसरों के लिए क्या भला मांगेंगे!

साध संगत, जिसके पास जो होता है, वही तो वह दूसरे को दे सकता है। अगर किसी के पास नफ़रत ही नफ़रत है तो उससे कोई प्यार की उम्मीद कैसे कर सकता है? जिसके पास प्यार है ही नहीं, वह प्यार कहां से दे सकता है! जिसके पास प्यार होता है वह ही प्यार ही बांटेगा। जैसे चीनी की बोरी भरी हो, उससे जहां से भी चाहें चीनी ही प्राप्त होगी। जिस बोरी में मिर्च हो उसमें जहां से भी देखेंगे, मिर्च ही निकलेगी। अगर हम सोचें कि इसमें कहीं से शक्कर निकल आये तो ऐसा नहीं हो सकता। साध संगत, सन्त इस निराकार प्रभु के साथ जुड़े होते है जो प्यार का भण्डार है इसलिए ये सभी को प्यार ही बांटते हैं भले ही वह कहीं का रहने वाला हो।

सन्त हमेशा सभी को सद्गुरु के साथ जोड़ते हैं। जैसे आप सब यहां मिलकर बैठे हो, बोली भी नहीं मिलती, खान–पान भी नहीं मिलता, पहरावा भी नहीं मिलता, फिर भी एक ही आवाज दे रहे हो कि गुरु के बगैर पार उतारा नहीं हो सकता।

साध संगत, गुरसिख किस प्रकार अपने गुरु को समर्पित होता है, इस बारे में आपने कई साखियां सुनी हैं। जैसे गुरु ने गुरसिख को कहा कि जाओ कपड़े धोकर ले आओ, उस वक्त आधी रात थी, भक्त ने गठरी उठायी और कपड़े धोने के लिए चल दिया। यह नहीं कहा कि महाराज, अभी तो रात है। जब वापिस आये तो गुरु साहिब ने कहा कि भाई रात को ही चल दिये, दिन भी नहीं निकलने दिया तो आगे से कहने लगे कि महाराज, मुझको तो यही पता है कि रात भी आपने बनाई है और दिन भी आपने बनाया है। मुझको इतनी ताकत देना कि आपके हुक्म की पालना कर सकूं।

ऐसे ही आपने सुना है कि लक्ष्मण जी जब राम जी के साथ शबरी के घर गये और जूठे बेर यह सोच कर पीछे फैंकते गए कि यह तो अछूत जाति की औरत है, मैं इसके मुख से निकले बेर कैसे खा सकता हूं। पर जब लक्ष्मण मूर्छित हुए तब वे बेर संजीवनी बूटी बन गये, उनको जिन्दगी देने वाले बन गये। जब वैद्य ने कहा कि वक्त बहुत कम है और समुद्र पार से संजीवनी बूटी लानी है। तब राम जी ने भक्त हनुमान जी को कहा कि वक्त बहुत कम है, समुद्र पार से बूटी लानी है तो हनुमान जी ने यही कहा कि प्रभु ये तो सब आप ही के हाथ में है, आप दूरियों को नज़दीकी में बदल सकते हैं। वक्त को बढ़ा सकते हैं। जब हनुमान जी पहाड़ी पर पहुंचे तो उन्हें सब बूटियां एक जैसी ही नज़र आने लगीं। तब हनुमान जी पूरी पहाड़ी ही उठा कर ले आए। जब राम जी कहने लगे कि हनुमानजी, आप तो पूरी पहाड़ी ही ले आये हो तो हनुमान जी कहने लगे कि यह तो आपका ही खेल है, मैं तो सिर्फ आपके हुक्म की पालना कर रहा हूं। भाव महापुरूष तो केवल सद्गुरु के हुक्म की पालना ही करते हैं। भक्ति मार्ग के लिए कहा गया है कि 'खंडियों तिक्खी वालों निक्की ऐत मार्च चलना' भाव यह मार्ग तो खंडे की धार से भी तेज़ और बाल से भी बारीक होता है, भक्त इस मार्ग पर चलते हुए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देते हैं। इस मार्ग पर गुरु की कृपा से ही चला जा सकता है। सद्गुरु जिससे भी चाहे, भक्ति करवा सकता है, सेवा करवा सकता है। जैसे कहा है –

अपनी सेवा आप कराये जिसते होय दयाला

भाव, जिसके ऊपर पूर्ण सद्गुरु की कृपा हो, वह ही सेवा कर सकता है। पूर्ण सत्गुरु का रहमो–कर्म हो तो भक्ति में शक्ति आ सकती है। अगर भक्त कहे कि मैं अपने आप ये शक्तियां हासिल कर सकता हूं तो चाहे वह सारी जिन्दगी लगा दे फिर भी यह शक्तियां हासिल नहीं कर सकता, पर सद्गुरु जिस पर भी एक नज़र डाल देता है, उसके वारे न्यारे हो जाते हैं। इसको भी यह यकीन आ जाये और हम कभी डुलायेमान न हों, इसके लिए जरूरी है कि ''पक्कियां दी संगत करनी है, कच्चियां विच मिलके नहीं बैणां''।

साध संगत, सिदक वालों का ही बेड़ा पार होता है। जो सब सहारे छोड़कर बस एक प्रभु का ही सहारा मानते हैं, उनके लिए यह हर जगह पर सहायी होता है। जैसे आपने यह उदाहरण अनेकों बार सुना है कि किसी राजा के घर कोई औलाद नहीं थी। उसको पंडितों ने कहा कि राजन, अगर तू किसी बच्चे की बलि देगा तभी तेरे घर में औलाद होगी। राजा ने सारे गांव में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई बलि के लिए अपना बच्चा देगा, मैं उसको मुंह मांगा इनाम दूंगा। एक बुजुर्ग के चार–पांच पुत्र थे। उनमें से एक पुत्र सेवा–सत्संग की तरफ लगा रहता था जबकि बाकी सब कमाई करते थे। उसने सोचा कि क्यूं न मैं यह पुत्रही राजा को दे दूं, यह कोई काम तो करना नहीं, सारा दिन सत्संग–सेवा में ही लगा रहता है। उसने वह पुत्र राजा को दे दिया। जब बलि चढ़ाने लगे तो पंडितों ने राजा से कहा कि इस बच्चे की आखिरी ख्वाहिश पूछ लो। जब उस बच्चे से पूछा गया तो उसने कहा – राजन्, मुझे रेत की एक बोरी ला दो। बोरी लाकर दे दी गई। बच्चे ने उस रेत की चार ढेरियाँ बना दी। सुमिरण किया और पहली ढेरी गिरा दी, फिर दूसरी, इसी तरह तीसरी, पर चौथी ढेरी उसी तरह ही रहने दी। यह देखकर पंडितों को और राजा को शक हो गया कि कहीं इस बच्चे ने कोई जादू वगैरह तो नहीं किया? अब तो शायद हम भी नही बच सकेंगे। यह शक दूर करने के लिए राजा ने उससे उन चारों ढेरियों के बारें में पूछा, तो उसने जवाब दिया कि पहली ढेरी माता–पिता की थी। माता–पिता को औलाद से बढकर कोई प्यार नहीं होता पर उन्होंने तो खुद ही मुझे आपको सौंप दिया, इसीलिए मैंने वह ढेरी गिरा दी। दूसरी ढेरी दोस्त–मित्रों की बनाई पर उनमें से भी किसी ने कुछ नहीं किया, बस देखते ही रहे, इसलिए मैंने वह ढेरी भी गिरा दी। तीसरी ढेरी मैंने राजा की बनाई जो प्रजा का रखवाला होता है पर राजा तो खुद ही मेरी बलि चढ़ा रहा है, इसीलिए मैंने वो ढेरी भी गिरा दी। चौथी ढेरी मैंने परमात्मा की बनाई है, अब इसकी मर्जी़, यह चाहे मुझे रख ले, या मारे। उसकी बातें सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुआ। उसने सोचा कि यह लड़का तो बहुत ज्ञानवान है, हो सकता है इसके बलि चढ़ाने के बाद भी मेरे घर औलाद न हो। क्यों न मैं इसी को ही गोद ले लूं

और राजा ने उसको ही गोद ले लिया। भाव, जिसने भी इसका सहारा लिया है, यह उनका सहारा बनता रहा हूं। हम भी यही अरदास, प्रार्थना करते रहें कि दातार हमें सन्तों–महापुरूषों का संग मिलता रहे, हमें शुद्ध भावना मिलती रहे।

साध संगत, यह तो आप जानते हैं कि मन तो ऐसा है जिसने कभी भी कोई अच्छी सोच नही सोची। यह कभी भी न अपने भले की सोचता है न दूसरों के भले की सोचता है। इसकी छोटी–छोटी बातें ही इतनी गिरावट की ओर ले जाती हैं कि इन्सान को सम्भालने नहीं देती। यह मन न तो सुख से बैठने देता है, न सुख से सोने देता है। यह तो साये हुआ भी कहीं का कहीं घूम रहा होता है और हमारे लिए परेशानियां खड़ी कर रहा होता है। इसलिए बार–बार यह प्रेरणा दी जाती है कि अगर मन को सुखमय बनाना चाहते हो तो इसे गुरु के हवाले कर दो। जो अपने मन को गुरु के हवाले कर देता है, गुरु फिर उसका इस तरह ध्यान रखता है जैसे एक मां अपने बेटे का ख्याल रखती है। आप जानते हैं कि जो छोटा–सा बच्चा होता है उसे कुछ पता नहीं होता, न खाने का, न पीने का, न चलने का। मां उसको उंगली पकड़कर चलाती है, उसके मुंह में बुरकी देकर खाना सिखाती है। उसको उठना–बैठना सिखाती है। इसी तरह सद्गुरु भी पहले तो प्रभु–परमात्मा से हमारी आत्मा को जोड़ते हैं, फिर उठना–बैठना, सोना–जागना, बोलना–सुनना आदि सब कुछ सिखाते हैं, तभी तो कहा है कि –

जिवें पुत्र प्यारे मांवा नूं, ऐवें भक्त प्यारे रब नूं।

4

साध संगत, ये जो स्वागत् और सत्कार आप कर रहे हैं, यह सब सत्कार और स्वागत् सद्गुरु का है। यह तो सद्गुरु का ही रहमों–कर्म है, जो किसी को भी अपनी स्टेज पर बिठाकर उसकी बड़ाई करवा देता है। सद्गुरु स्वयं विशाल होता है और इसने हमारा नाता भी इस विशाल निरंकार के साथ जोड़ा है। लेकिन इस विशालता को वह ही प्राप्त करता है जो नम्रता को अपनाता है। जैसे कहा भी है कि –

आपस कउ जो जाणै नीचा। सोऊ गनीए सभ ते ऊचा।।

जो अपने आपको नीचा मानता है वह ही ऊंचाईयों को प्राप्त करता है। आपने देखा होगा कि जब किसी ने ऊंची पहाड़ी पर चढ़ना होता है तो उसे झुककर चढ़ना पड़ता

है, लेकिन जब नीचे उतरना होता है तो सीधा अकड़कर उतरना पड़ता है। इसका भाव यही है कि यदि गुरमत की ऊंचाईयों को प्राप्त करना है तो हमें विनम्र होना पड़ेगा।

साध संगत, ज्ञानीजनों के लिए महात्माओं ने ऐसे कहा है कि –

गिआनी होइ सु चेतनु होइ।

भाव, ज्ञानीजन हमेंशा चेतनता में रहते हुए संसार में भ्रमण करते हैं। इनकी जुबान पर गुरु की महिमा ही होती है क्योंकि गुरु ही इनके जीवन का आधार होता है। आपने इतिहास में पढ़ा होगा कि श्री गुरु अमरदास जी महाराज ने 72 साल की वृद्ध आयु में किस तरह सद्गुरु की सेवा कमाई। हम जब इस अवस्था में होते हैं तो अक्सर कह देते हैं कि मेरे ऊपर तो बुढ़ापा आ गया है और मैं एक छोटा–सा थैला भी नहीं उठा सकता लेकिन उन्होंने हर रोज किस तरह से पानी के घड़े भर–भर कर गुरु की सेवा की और हमें समझाया कि गुरसिख हमेंशा अपने आपको गुरु का दास मानकर ही जीता है। हम बचपन में पड़ा करते थे कि 'असी तेरे घर दे गोले।' 'गोला' नौकर को कहते हैं, जो चाकरी करता है। यह बात पहले समझ में नही आती थी लेकिन जब सद्गुरु की कृपा हुई, तब यह पता चला है। अब हमे चेतन रहना है। कहीं हम अब भी चूक न कर जायें। जब भी सेवा का वक्त आये, हम उसमें आनाकानी न करें। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार एक भवन खरीदना था। बाबा अवतार सिंह जी ने संगतों को प्रेरणा देते हुए फरमाया कि जो–जो भी इस यज्ञ में हिस्सा डालेंगे, उनको किसी चीज़ की कमी नहीं आएगी, उनकी अपनी कोठियां भी बन जाएंगी।

जब सेवा का यह फ़रमान आया तो दिल्ली के एक सेवादार प्रेमी भक्त निहाल चन्द कंवर जी, जो अक्सर यह कविता पढ़ते थे कि 'खलावां च बणयै मेरा अशियाना' सोचने लगे कि मेरे पास तो पैसे ही नहीं हैं लेकिन मैंने शहनशाह जी (बाबा अवतार सिह जी) के वचन की पालना भी करनी है, तो कैसे किया जाये! उन्होंने उस समय पास ही बैठे हुए एक महात्मा से सौ रूप्या उधार लेकर 'बिल्डिंग फंड' में सेवा कर दी। दातार की कृपा हुई कि दो–चार साल के अन्दर–अन्दर ही उनकी एक नहीं दो कोठिया बन गयीं। जब लोगों ने पूछा कि यह कैसे हुआ तो उन्होंने कहा कि मुझे तो कुछ पता नहीं, यह माया कहां से आई! दातार की कृपा से जो व्यापार पहले घाटे में जा रहा था, अब मुनाफे में चल रहा है।

भाव, यह दातार तो हमारे सारे ही काम करता है, मगर शर्त यह है कि हमारा विश्वास पूर्ण हो और हमारा मन कभी भी डुलायमान न हो। जब हम डुलायमान हो जाते हैं और मन में शंका रखते हैं कि पता नहीं, यह काम होगा या नहीं होगा, तब प्रभु भी क्या कर सकता है! हम अपने विश्वास को पूर्ण रखें और सच्चे हृदय से यह प्रार्थना करते रहें कि हे प्रभु मेरा दुख-सुख सब तेरे हाथ है, तो यह प्रभु हमारी हर आवश्यकता को पूर्ण करता है।

साध संगत, यह गुरु की कृपा है कि हम जहां भी जाते हैं, हमारी सेवा होती है, सत्कार होता है और हमें उसी स्टेज़ पर बिठाया जाता है जहां सद्गुरु को बिठाया जाता है। हमने हमेशा यह ध्यान में रखना है कि यह सब बड़ाई गुरु की है। वरना दुनिया में और बहुत से मंच हैं, सिंहासन हैं लेकिन उन पर कोई दूसरा नहीं बैठ सकता चाहे वह कितना भी प्यारा भक्त क्यों न हो, दिन-रात सेवा में क्यों न रत् रहता हो। यह विशालता पूर्ण सद्गुरु में ही होती है। इस विशालता को देखकर हमने भी यही प्रार्थना करनी है कि हमारे मन भी विशाल हो जाएं, इनमें कोई तंगदिली न रहे क्योंकि तंगदिली ही हमेशा परेशान करती है। तंगदिली के कारण ही किसी बढ़ते हुए को देखकर जलन पैदा होती है कि मैं तो गरीब हूं वो दौलतमन्द कैसे हो गया? यह सोच हमें सोने भी नहीं देती। इसके विपरीत जब विशालता हृदय में आ जाये तब इन्सान यही सोचता है कि हे प्रभु! मुझे पेट भर भोजन दिया है, सबको दे, मुझे तन ढांकने के लिए वस्त्र दिये हैं, सबको दे, मुझे रहने के लिए जगह दी है, सबको दे। ऐसे विशालता वाले गुरसिख के दिये हुए वरदान भी कभी खाली नहीं जाते, क्योंकि एक गुरसिख दूसरे गुरसिख को सद्गुरु का स्वरूप मानकर ही आशीर्वाद की कामना करता है।

साध संगत, मुझे याद है कि एक बार कहीं बहिनों के सत्संग का कार्यक्रम था। सत्संग की समाप्ति के उपरान्त जब हम बैठे हुए थे तो जिनके घर प्रोग्राम था, उस बहिन ने अरदास की कि माताजी, दस साल हो गये शादी हुए, कोई औलाद नहीं। कृपा करो, औलाद बख्श दो। सद्गुरु के दरबार में कोई कमी नहीं है, आप चाहे सद्गुरु से मांगकर दे दो। इससे पहले कि मैं कुछ बोलती, नज़दीक ही एक और बहिन का बच्चा खड़ा था, उसके हाथ में एक छुनछुना था, उसने उस औलाद मांगने वाली बहिन को वह छुनछुना देते हुए कहा - यह लीजिए आंटी जी, जब आपके घर बच्चा हो तो उसको खेलने के लिए दे देना। उस बहिन ने उस नन्हे से बालक की आशीर्वाद को भी अपने पल्ले में बांध लिया ओर वह छुनछुना ले लिया। कुछ वर्षों के बाद दातार ने उसके घर सन्तान दी और वही छुनछुना उसके बच्चे को खेलने को दिया

जो उसने सम्भाल कर रखा था। यह कोई बनावट वाली बातें नहीं, महापुरुषों के साथ घटी हुई हैं कि सद्गुरु के दर पर एक छोटे से बच्चे का बोल भी खाली नहीं जाता। हमें अपने विश्वास को ही पक्का करना होता है।

आओ! अरदास करें, दातार कृपा करना कि हमें सन्तों का संग मिलता रहे क्योंकि दुनिया में हमारे ध्यान को प्रभु-चरणों से दूर करने वाले, श्रद्धा को डुलायमान करने वाले तो बहुत मिल जाते हैं लेकिन केवल सन्त ही होते हैं जो हमारे विश्वास को अपने आचरण से पक्का करते हैं। उनके संग से ही हमारे सिर पर सद्गुरु का आशीर्वाद भरा हाथ रहता है और हमारी ज़िन्दगी खुशहाली से और चिन्ता रहित गुज़र जाती है।

5

साध संगत, प्रभु की भक्ति हमारे मन को सकून देने वाली, चैन देने वाली होती है। अभी आपने मुक्ति-पर्व के बारे में भी सुना। यह वह दिन है जिस दिन हमारा देश आजाद हुआ। देश तो आजाद हो गया पर तंगदिलियां बढ़ गईं, ऊंच-नीच बढ़ गई, छूत-छात बढ़ गई। जैसे एक कवि ने कहा है -

की होया जे देश आजाद होय।
जे कर रूह नही होई आज़ाद साडी।।

यह जीवात्मा जो अपने मूल से बिछुड़ कर अलग-अलग शरीरों में विचरण करती है, माया के जाल में फंसी रहती है, इस जीवात्मा को आज़ादी कैसे मिले? इसका यह आवागमन कैसे समाप्त हो? इसमें कोई शक नहीं कि जीवात्मा की आज़ादी, इसकी मुक्ति के लिए भक्ति की जाती है, पूजा-पाठ, जप-तप किये जाते हैं, पर इस जीवात्मा को जब तक ठिकाना नहीं मिलता, यह मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। यह आत्मा परमात्मा की अंश है। यह अंश तब तक अलग है, ठोकरें खा रही है, भ्रमण कर रही है। यह ठोकरें, यह भटकन तब ही समाप्त हो सकती है जब यह मालूम हो कि इसका असल ठिकाना कौन-सा है, मंजिल कौन सी है। इसीलिए सन्त-महात्मा कहते हैं कि तुम्हें इस निशाने की ज़रूरत है कि जब यह आत्मा शरीर छोड़ेगी तो कहां जायेगी? अगर यह परमात्मा को जानती होगी तो शरीर से निकलकर परमात्मा में लीन हो जायेगी और कह उठेगी कि -

आवण जाणु रहिओ!!

तपत कड़ाहा बुझि गइआ
गुरि सीतल नामु दीओ!!

भाव जब गुरु ने ज्ञान दिया, इस अंग–संग प्रभु के दीदार करवा दिये, मेरा आवागमन का चक्कर खत्म हो गया है। अब तो –

मैं न मरउ मरिबो संसारा।।
अब मोहि मिलिओ है जीआवनहारा।।

भाव, अब में दुनिया के लोगों की तरह नहीं मरूंगा, मुझे जिन्दगी देने वाला मिल गया है। यह शरीर ही नही आत्मा की बात है। इस शरीर ने तो मरना ही है। अगर इन्सान सौ वर्ष भी जिन्दा रहे तो भी एक दिन तो यह शरीर मिट्टी में मिल जायेगा, राख हो जायेगा। इस शरीर की महत्ता इसी में है इसमें रहते हुए आत्मा अपने मूल परमात्मा को जान सकती है। वैसे यह परमात्मा तो कण–कण में व्यापक है, पत्ते–पत्ते में समाया हुआ है, हर जगर मौजूद है लेकिन अगर इन्सान कहे कि मैं अपने यत्नों द्वारा जान लूं कि कौन–सा परमात्मा है तो नहीं जान सकता।

अंग–संग होते हुए भी यह परमात्मा हमें इसलिए दिखाई नहीं देता, क्योंकि हमें कोई दिखाने वाला मिला ही नहीं। कोई हमें मन्ज़िल तक ले ही नहीं गया। रास्ता बताने वाले तो बहुत मिले, इधर चले जाओ, उधर चले जाओ, सारे रास्ते एक ही तरफ जाते हैं। रास्ते तो जाते हैं, पर वो रास्ता पता नहीं कब खत्म होगा। कई कहते हैं कि इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में पार उतारा हो जाएगा। यह सब भ्रम की बातें हैं। पूर्ण सद्गुरु मिल जाये तो परमात्मा अंग–संग दिखा देता है। पर जितनी देर तक – 'भेदी लीजे साथ' वाली बात नहीं करते, उतनी देर तक इसका राज़ समझ नहीं आता। जैसे हमने किसी का सिर्फ़ नाम ही सुना हो, उसको जानते न हों तो फिर चाहे वह हमारे पास ही क्यों न खड़ा हो, हम नहीं पहचान सकते। एक दिन की बात है, मैं दिल्ली भवन में खड़ी थी, और भी दो–चार बहिनें साथ खड़ी थीं। दो बहिनें आई और कहने लगीं कि राजमाता जी को मिलना है, वो कहां हैं? उन्होंने मुझे ही सवाल किया। मैंने कहा – अभी बता देते हैं। वो साथ खड़ी बहिनें कहने लगीं कि जिनको आप सवाल कर रहे हो, यही तो राजमाता जी हैं। वो बहिनें कहने लगीं कि हमने नाम तो बहुत सुन रखा था पर देखा नहीं था, इसलिए पाहचान नहीं सकी। भाव, हम एक मामूली इन्सान की भी स्वयं पहचान नहीं कर सकते तो फिर परमात्मा

को हम अपने आप कैसे जान सकते हैं? अगर अपने आप जान सकते तो यह न कहना पड़ता कि –

घोल घुमाई तिस मित्र विचोले जेह मिल कंत पछाणा ।।

कहते हैं कि मैं ऐसे मित्र विचोले से वाी जांऊ जिससे मिलकर मुझे इस प्रभु–परमात्मा की पहचान हुई है। जिसको गुरु की कृपा से यह पहचान हो जाती है, वह कहता है कि –

गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु।।
हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु।।

भाव हरि की कृपा से मुझे ऐसा सन्त मिला जिसने मेरे मन में रोशनी कर दी, यह मन अन्धेरे में था गुरु ने इसमें प्रकाश कर दिया। यह भक्ति की बातें गुरु की कृपा से ही समझ आती हैं, मीरा को समझ आई तो उसने गली–गली, मौहल्ले–मौहल्ले आवाज़ दी, केवल आवाज़ ही नहीं दी, पैरों में घुंघरूं बांध कर नाचती रही और कहा –

सखी री मैंने गोबिन्द लीनों मोल,
कोई कहे मंहगा कोई कहे सस्ता।
मैं लियो तराजू तोल,
ब्रज के लोग सब चर्च करत है,
मैं लियों बजा के ढोल।

मक्खन शाह लुभाने को मिला तो उसने छत पर चढ़कर आवाज़ दी –

गुरु लाधो रे, गुरु लाधो रे।

साध संगत, यह पहचान उसे ही होती है जो अपने अहं को त्याग देता है, समर्पित हो जाता है। जैसे किसी शायर ने कहा भी है कि –

मिटा दे अपनी हस्ती को अगर कुछ मर्तबा चाहे।
दाना ख़ाक में मिलके गुले–गुलज़ार होता है।

भाव, अपने आपको मिटाना पड़ता है, गंवाना पड़ता है। अगर कोई किसान कहे कि मैंने साफ–सुथरे दाने करके बोरियां भरी हैं, मैं इनको मिट्टी में कैसे मिला दूं तो उसके पास उतनी ही बोरियां रहती हैं, बढ़ती नहीं है। हां, अगर वह मिट्टी में मिला देगा तो आप जानते हैं कि एक–एक दाने से एक बूटा उगता है, एक बूटे पर कितने सिट्टे लगते हैं और एक सिट्टे में कितने दाने लगते हैं? वे दाने कितने गुना होकर उसका घर–आंगन भर देते हैं। इसी तरह ही आप देखते हैं कि जिस वृक्ष को फल लगे होते हैं, उनकी टहनियां ज़मीन को छू रही होती हैं और इसके उल्ट जो बांस की तरह अकड़कर खड़े रहते हैं उन पर कोई फल नहीं लगता। उनके लिए कहते हैं कि–

कबीर बांसु बडाई बूडिआ इउ मत डूबहु कोइ।।
चंदन कै निकटे बसै बांसु सुगंधु न होइ।।

साध संगत, चन्दन के साथ छोटी–छोटी कांटेदार झाड़ियां होती हैं, आक जैसे कड़वे बूटे भी होते हैं, उनके अन्दर भी चन्दन की खूशबू चली जाती है पर बांस से बूटे में चंदन की खूशबू नही जाती क्योंकि वह अपनी ही बड़ाई में रहता है कि मैं सबसे ऊंचा हूं, बड़ा हूँ।

साध संगत, अगर कोई अपने अभिमान को त्याग कर नम्रता को अपना कर गुरु की शरण में आता है, तो गुरु उसके गुण–अवगुण नहीं चितारता, अपनी शरण में ले लेता है। जैसा लिखा है कि –

गुनु अवगनु मेरो कछु न वीचारो।।
नह देखिओ रूप रंग सींगारो।।

अगर सद्गुरु अवगुण चितारता तो आज कौडा राक्षस, अजामल पापी, सज्जन ठग, चोर भूमिया जैसों के नाम हमें भक्तों में न मिलते। सुदामा जैसे, भीलनी जैसे, राजा जनक जैसे भी हुए, सद्गुरु ने किसी की ज़ात–पात, गुण–अवगुण, अमीरी–गरीबी कुछ नहीं देखा क्योंकि सद्गुरु के लिए सभी समान होते हैं। अगर सद्गुरु बख्शनहार न होता तो आज उन भक्तों के नाम न लिये जाते जो सारे संसार के लिए हमेशा यह प्रार्थना करते हैं कि –

जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि ।।
जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि।।

भाव, जैसे भी हो दातार, इस संसार को बचा ले वरना यह जलकर राख हो जायेगा। साध संगत, इस दुनिया को 'गुज्जी भा' कहा गया है। 'गुज्जी भा' उसको कहते जल रहा था। किसी को अच्छा खाते देखता, अच्छा पहनते देखता, फलता-फूलता देखता तो मन में ईर्ष्या ही ईर्ष्या होती थी लेकिन जबसे सद्गुरु की कृपा हुई है तब से पहले जहां किसी को देखकर ईर्ष्या होती थी, अब वहां मालिक का शुक्राना निकलता है। किसी को अच्छा खाते देखता हूं तो यही अरदास होती है कि हे दातार सबको दे, कोई अच्छे घर में रहता है, अच्छा परिवार है तो यही आवाज निकलती है कि दातार सबका परिवार ऐसा ही बने। साध संगत, मन तो वही है, पर पहले इसके अन्दर बुरी भावना थी। गुरु ने वह भावना बदलकर रख दी है, सोच को भी बदलकर रख दिया है।

साध संगत, सांसारिक विद्या की महत्ता है पर अगर किसी अनपढ़ के आगे किताब रख दें तो उसके लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' होता है। जब वही इन्सान किसी उस्ताद के पास चला जाता है तो फिर वह कितनी ही डिग्रियां प्राप्त कर लेता है। भाव उस्ताद के बिना इल्म नहीं मिलता। एक बार टूर के दौरान शिमला गये तो वहां भी इसी तरह कहा कि उस्ताद के बिना इल्म नहीं मिलता। जब साध संगत का भोग पड़ा तो जहां हम ठहरे थे, वहां पहुंचे। पीछे-पीछे एक बुजुर्ग भी आ गए और कहने लगे कि माताजी, आपने कहा है कि उस्ताद के बगैर इल्म नहीं होता पर हमारा बच्चा तो पांचवीं की किताब पढ़ रहा है, हमने उसको बाज़ार से खरीदकर दी है। मैंने कहा - अच्छा, बुजुर्गो यह तो बहुत अच्छी बात है। फिर मैंने धीरे से पूछा कि उसको घर में कोई तो पढ़ाता होगा तो कहने लगे कि उसकी बड़ी बहिन पढ़ाती है। मैंने कहा कि फिर उसकी उस्ताद तो वहीं हुई, आखिर उसको पढ़ाया है न उसने।

आओ साध संगत यही अरदास, प्रार्थना करें कि दातार -

तुध डिठे सच्चे पातशाह, मल जन्म-जन्म दी उतरे।

जबसे तुझे देखा है तूने जन्मों-जन्मों की मैल उतार दी है। यही कृपा करना, हम कहीं गुमराह होकर फिर इस मैल में न फंस जायें। तूने यह साफ-सुथरा जीवन दिया है इसको जीते हुए जो बाकी की उम्र है, जीवन का सफ़र है, इसको बड़े आराम के साथ तय करते चले जायें।

साध संगत, गुरसिख उसी को कहते हैं जो पल–पल पर गुरु की शिक्षा पर ध्यान देता है कि सद्गुरु हमें कैसे चलाना चाहते हैं, हमसे कैसी–कैसी उम्मीदें रखते हैं। गुरसिख हर पल अपने गुरु की शिक्षा मन में बसाये रखते हैं, उनके बैठने–उठने, देखने आदि सबमें तबदीली आ जाती है। आप साध संगत में आने वाले बच्चों की चाल–ढाल देखो और संसार में रहने वाले बच्चों की चाल–ढाल देखो। सन्तों का बोल–चाल देखो और जिस दुनिया में हम रहते हैं, उनकी बोलचाल देखों तो अन्तर स्पष्ट हो जाता है कि गुरु कृपा से जीवन में कितना अन्तर आ जाता है। साध संगत, गुरु की कृपा से ही प्रभु को जाना जा सकता है, अपने आप नहीं। अपने आप के लिए तो कहा है कि – अपनी करनी ते नरक न पाऊं ठौर।

भाव अपनी करनी से तो शायद नरकों में भी जगह न मिल सके लेकिन जब सद्गुरु की महान कृपा हो जाती है तो गुरसिख का एक–एक शब्द गुरबाणी में दर्ज हो जाता है। आप सब भाई गुरदास जी को जानते हैं, उनके शब्दों को गुरु–ग्रन्थ साहिब की कुंजी का दर्जा दिया गया है। उनके जीवन की एक घटना है कि –

वे जब भी स्टेज पर खड़े होते, इस बात को दोहराते, 'जे गुर सांग वरतदा सिक्ख सिदक न हारे।' एक दिन गुरु साहिब ने कहा कि जाओ ये कुछ अशर्फियां ले जाओ और घोड़े खरीदकर लाओ। भाई गुरदास जी चल पड़े। एक जगह पर घोड़े के व्यपारियों से सौदा तय हो गया। जब तम्बू के अन्दर गये तो वहां पर वे अशर्फियां उनको ठिकरियां (कंकर) नज़र आने लगीं। सोचने लगे कि अब क्या करूं, व्यापारी तम्बू के बाहर खड़े हैं और सौदा भी हो चुका है, मैं उनको क्या मुंह दिखाऊं! क्या किया, तम्बू फाड़कर पीछे की तरफ से दूसरी नगरी की ओर भाग गये। वहां जाकर भी अपने गुरु की महिमा ही गाई। जब भाई गुरदास जी काफी दिन तक वापिस नहीं आये तो गुरुसाहिब ने कुछ सेवकों को भेजा कि भाई गुरदास को ढूंढ कर लाओ। सेवक ढूंढते–ढूंढते उस तम्बू तक पहुंच गये। देखा, अशर्फियों का ढेर लगा हुआ है पर वहां है कोई भी नहीं। पूछने पर पता लगा कि वह फलां नगरी में चले गये हैं। उन्होंने वापिस आकर गुरु साहिब को बताया तो गुरुसाहिब कहने लगे कि वह जहां भी है, जाकर मुसक्का बांधकर ले आओ। जब उनको बांधकर गुरु साहिब के पास ले गये तो गुरुसाहिब मुस्कुराकर कहने लगे – भाई गुरदास, वह बात फिर दोहराना जो तुम रोज पढ़ते थे। तब भाई गुरदास ने कहा कि –

जे गुर संग वरतदा सिक्ख सिदक न हारे।

नहीं, बल्कि
जे गुर सांग वरतदा क्या सिक्ख विचारे।

साध संगत, यह बातें तब ही समझ आती हैं जब हमारे मन का नाता सद्गुरु के साथ जुड़ जाता है, वरना मन के बारे में तो आप सब जानते हैं कि मन तो ऐसी ऊंची–ऊंची उडारियां (उड़ानें) उड़ता है कि कोई इस तक पहुंच नहीं सकता। कई बार आप साथ बैठे इन्सान के साथ बात करके देखें तो उसका ध्यान, मन कहीं और गया हुआ होता है। हम एक–दो बार उसको कोई बात कहते हैं और अगर वह हमारी बात का जवाब नहीं देता तो हम उसे झंझोड़ कर कहते हैं कि तू कहा गया हुआ था, मैंने तेरे साथ दो बार बात की लेकिन तूने उसका कोई उत्तर नहीं दिया? तो वह आगे से कहता है, ओह! मेरा मन तो कहीं और गया हुआ था। साध संगत, शहनशाह बाबा अवतार सिंह जी कहा करते थे कि जहां भी जाया करों, ध्यान से सुना करो, अगर ध्यान से नहीं सुनोगे तो फिर ये कैसे कह सकोगे ये यही बोले हैं या गलत, या इनके विचार कैसे हैं। अगर आप अपनी ही बातों में उलझे रहे, ध्यान से सुना ही नही तो आप उसका उत्तर क्या दे सकोगे? जिन्होंने भी महात्माओं की बातों को ध्यान से सुना, आज उनकी बातें भी ध्यान से सुनी जा रही हैं।

साध संगत, सभी गुरु पीर–पैगम्बरों ने अपनी वाणी में हर समय नम्रता–प्यार की ही बात की है। जब हम गुरु नानक देव जी की 'बाणी' पढ़ते हैं तो वह भी अपनी बाणी में यही कहते हैं –

नानक दासु इहै सुखु मांगै मो कउ करि संतन की धूरे।।
और
धूड़ी विचि लुडदड़ी सोहां नानक तै सह नाले।।

इतनी नम्रता, इतना प्यारा। और हम उसे पढ़ने वाले, एक–दो शब्द पढ़कर ही अपने आपको बहुत ऊँचा समझने लग पड़ते हैं। यह मानने लग जाते हैं कि हमारे जैसा कोई ऊँचा नहीं है। बाकी सब हमारे से नीचे हैं। हम बहुत कुद जानते हैं, ये कुछ भी नहीं जानते।

साध संगत, अगर हम भक्तों के एक शब्द को भी अपने हृदय में बसा लेते हैं तो जीवन ऐसा बन जाता है, जिसकी मिसालें दी जा सकती हैं। भक्त वही होते हैं जिनके लिए कहा गया है कि –

भगत तेरै मनि भावदे दरि सोहनि कीरति गावदे।।

वही भक्त शोभायमान होते हैं जो इसकी कीर्ति स्तुति करते हैं। वे भक्त नहीं होते जो निन्दा, चुगली, वैर, विरोध में पड़े होते हैं। अगर हम स्तुति करने वालों की शिक्षा पर चलें तो यह जीवन बहुत खुशहाल होगा, हमारा मन भी आनन्दित होगा और वातावरण भी खुशहाल बना रहेगा क्योंकि मन की जैसी अवस्था होती है हम वातावरण का भी वैसा ही प्रभाव ग्रहण करते हैं। जैसे बरसात होती है तो पत्तों के ऊपर, घास पर बरसात की बूंदे टिकी होती हैं उन्हें देखकर, जिसके मन में खुशी होती है, वह कहता है कि ये बूंदे कितनी अच्छी लग रही हैं, जैसे मोती बिखरे हुए हैं और जिसके मन में उदासी होती है कि वह कहता है कि देखो भगवान भी आँसू बहा रहा है। इसी प्रकार कई बार अपने घर से हम बड़े खुश-खुश मूड में यह सोचकर चलते हैं कि चलो दोस्त के घर जाते हैं, वहाँ अच्छा हंसी-मजाक करते हैं। जब उधर पहुँचते हैं तो वह आगे उदास बैठा होता है या रो रहा होता है। उस समय हम क्या करते हैं, खुद भी उदासी का मूड बना लेते हैं और उसके साथ उस जैसा ही मुँह बनाकर बैठ जाते हैं। इसके विपरीत कभी हम घर से उदास जाते हैं पर आगे दोस्त के घर खूब हंसी-मजाक हो रहा होता है तो हमारा मूड भी उसी तरह खुशी वाला बन जाता है। आपने यह भी देखा होगा कि बच्चे अक्सर शीशे के आगे खड़े हो जाते हैं। वे जीभ निकालते हैं तो आगे शीशे से भी जीभ निकलती है। अगर वे रोना शुरू कर देते हैं तो आगे से रोनी सूरत ही नज़र आती है, अगर वे हँसना शुरू कर देते हैं या टेढ़ा-मेढ़ा अपने आपको कर लेते हैं तो शीशे ने तो लिहाज नहीं करना, उसने तो उसी तरह ही दिखाना है। भक्ति की बातें भी इसी तरह होती हैं। जैसे-जैसे कोई मन में विश्वास ले आता है, सिदक ले आता है, अपने गुरु पर भरोसा ले आता है वैसे-वैसे ही वह आनन्द और खुशी प्राप्त करना है।

आओ साध संगत! यही अरदास, प्रार्थना करें कि दातार हमें भक्ति के रंग में रंगे रखे ताकि हमारा विश्वास और भरोसा दृढ़ बना रहें।

7

साध संगत, आप सब बड़ी श्रद्धा के साथ भक्ति का आनन्द ले रहे हैं। भक्ति एक ऐसी चीज है जो हमें सुख देने वाली है। भक्ति-रस से हमें सुख मिलता है, इस मन को चैन मिलता है। इसमें कोई शक नहीं कि यहां जितने भी मिलकर बैठे हुए हैं, इनकी चाहे बोली-भाषा नहीं मिलती होगी, ख्याल नहीं मिलते होंगे, पहनावे भी

नहीं मिलते होंगे, परन्तु जिस समय परमात्मा– गॉड–वाहेगुरु की बात होती है, वह सबको ही समझ आ जाती है।

साध संगत, इन्सान दुनिया में आया है, इसको सोच–समझ दी गई है, इसने भक्ति की मिसाल कायम करनी है, इस जन्म में। यदि हम पशु इकट्ठे कर लें, पक्षी इकट्ठे कर लें और उनको भगवान–परमात्मा–अल्लाह–गॉड की बातें सुनायें तो वे नहीं सुन सकते क्योंकि उनको ऐसी समझ नहीं मिली। यह समझ केवल इन्सान को ही दी गई है। इसे ही कहा गया है कि –

पउड़ी छुड़की फिरि हाथि न आवै अहिला जनमु गवाइआ।।

ऐ इंसान, तुझे यह ऐसा अमोलक मानुष–तन मिला है पर तू इसे ऐसे ही गंवाकर जा रहा है। जितने भी हमारे गुरु–पीर–महात्मा आये उन्होंने हमें बड़े प्यार के साथ भी समझाया और जहाँ कोई बात कहनी पड़ी, वह भी हमें कह दी। महात्मा को अपना कोई लालच नहीं होता, उसके दिल में बस यही लालसा होती है कि इस धरती पर बसने वाले जितने भी इन्सान हैं, वे इस प्रभु–परमात्मा को जानकर भक्ति करें क्योंकि –

जब देखा तब गांवा फिर गावे का फल पांवा।
जब तक न देखूं अपनी नैनी तब तक न मानूं गुरु की कहनी।।

साध संगत, अगर कोई हमारे सामने किसी की तारीफ करता है तो हमारा दिल कई बार यह सोचता है कि जिस इन्सान के बारें में इतनी तारीफें की गई हैं, क्या वह इतनी तारीफों के योग्य है भी कि नहीं? पर जिस समय हम उसे देख लेते हैं और जितनी तारीफों के योग्य है भी कि नहीं? पर जिस समय हम उसे देख लेते हैं और जितनी तारीफें उसकी सुनी होती हैं वही गुण उसमें होते हैं तो फिर हमें तसल्ली हो जाती है। सद्गुरु के बारे में भी ऐसे कहा गया है कि –

विछुड़िआ मेले प्रभु हरि दरगह का बसीठ।।

भाव, हम जन्मों के बिछुड़े हुए थे, इस सद्गुरु ने हमें इस प्रभु के साथ मिला दिया। जब यह बात हमारे साथ भी घटित होती है तो हमें सद्गुरु पर विश्वास आ जाता है। जब विश्वास आ जाता है तो हम भी हर समय सद्गुरु की, निरंकार प्रभु की बात ही करे हैं। जिस तरह कहा है कि –

आवहु भैणे गलि मिलह अंकि सहेलडीआह।।
मिलि कै करह कहाणीआ संग्रथ कंत कीआह।।

साध संगत, जब भक्त लोग मिलकर बैठते हैं तो सद्गुरु की ही बातें करते हैं और जब हम ऐसी बातें सुनते हैं तो हमारा दिल खुश होता है और चाहता है कि यह और सुनाते चले जायें। और अब कोई किसी की निन्दा–चुगली लेकर बैठ जाये तो वह हमें अच्छी नहीं लगती। हम कहते हैं कि तू तो उस तरह कर रहा है कि जिस तरह किसी ने अपने सिर पर बोझ उठाया हुआ हो। दूसरा कोई आये तो उससे भी कहे कि तू भी अपना वज़न मुझे दे दे। भाव, उसकी गर्दन तो बच गई, उसका सिर तो बच गया, पर हमने जान–बूझकर उसका वज़न भी अपने सिर पर उठा लिया। जिनको निन्दा–जुगली, लोभ–लालच की आदत होती है वे हमें परेशानियों के अलावा और कुछ नहीं देते। इसलिए हम निन्दा चुगली न करके सबको यही सन्देश दें कि –

गुरि मिलिऐ हरि मेला होई।।

जो भी सद्गुरु के साथ मिलता है यह उसका हरि से मिलाप करा देता है। सद्गुरु संसार में रोशनी बाँटने आते हैं। घर में यदि अन्धकार हो और कोई आकर दीपक जला दे तो सारा घर ही जगमगा उठता है। हम कहते हैं कि पहले तो यहां इतना अन्धेरा था कि कुछ भी नज़र नहीं आ रहा था, जबसे यह दीपक जलाया है, सब कुछ नज़र आ रहा है। कहा भी है –

दीवा बलै अंधेरा जाइ।।

जिस समय दीपक जलता है तो अन्धेरा दूर हो जाता है। इसी तरह इस मन के अन्दर भी इतना अन्धेरा है कि इन्सान को कुछ पता नहीं लगता कि मैंने इस दुनियाँ में क्या करना है, किस काम के लिए मैं यहां आया हूँ पर जिस दिन पूर्ण सद्गुरु मिल जाता है तो फिर कहा जाता है कि –

मिटिया हनेरा चंद चढ़या

साध संगत, सद्गुरु जिस समय प्रकट हो जाता है तो हमारे हृदयों में प्रकाश कर देता है, हमको सब कुछ समझ आ जाता है। फिर हम जो भी करते हैं उसका हमको

पता होता है कि यह गलत है या सही है। इसीलिए भक्त हर वक्त यही अरदास–प्रार्थना करते हैं कि किसी के साथ किसी समय भी कोई ऐसी बात न करें, ऐसा व्यवहार न करें, जिसका कोई मतलब ही न निकलता हो और उलटे परेशानी हो। इसी तरह की एक घटना है कि – एक माता थी, उसके पास एक लड़का आया और कहने लगा कि मैं यहां नजदीक ही रहता हूँ, घर में और कोई नहीं है इसलिए आप ही रोटी पकाता हूं। माता ने कहा – तू आटा यहां ले आ, मैं तुझको रोटी पका दूंगी। वह आटा लेकर आ गया। जिस समय माता ने आटे में पानी डाला तो वह लड़का कहने लगा – माँ, वो जो भैंस खड़ी है वो किसकी है? माता ने कहा – हमारी है। लड़का कहने लगा – अगर ये मर गई तब आप क्या करोगे? माता ने कहा – ऐसी बातें नहीं करते। तू अपनी ये रोटियां ले और घर जाकर खा। दूसरे दिन वह फिर आटा लेकर आ गया। माता ने जिस समय आटे में पानी डाला तो कहने लगा कि वह सामने जो दूध रिड़क (बिलो) रही है, वह आपकी क्या लगती है? माता ने कहा कि वो मेरी पुत्रवधु है। लड़का कहने लगा कि अगर तेरा पुत्र मर गया तो इतनी सुन्दर पुत्रवधु का फिर क्या बनेगा? माता को बहुत गुस्सा आया ओर उसने वह पानी वाला आटा उसकी झोली में डाल दिया। अब वह लड़का जब रास्ते में जा रहा था तो वह पानी झोली में से नीचे टपक रहा था। लोगों ने पूछा कि यह क्या टपक रहा है? तो उसने कहा – ये मेरी जुबान का रस टपक रहा है। मैं अच्छी–खासी पकी–पकाई रोटी खा रहा था, पर जुबान से निकली हुई इस तरह की बातों ने ये गीला आटा मेरी झोली में डलवा दिया। इसीलिए कहा है कि –

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै, आपुहिं शीतल होय।।

कहने का भाव यह है कि इस जुबान से ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जिससे अपने मन को भी ठंडक प्राप्त हो व दूसरे के मन को भी ठंडक प्राप्त हो। सन्त का जीवन इसी तरह का होता है।

साध संगत, जो इस राज के वाकिफ हो जाते हैं कि सभी इंसान एक प्रभु की संतान है तो वे एक हो जाते है। जिस तरह आप देखते हैं कि खरबूजे पर बाहर से फाँकों के निशान लगे होते हैं लेकिन जब उसको काटते हैं तो अन्दर से वह एक ही होता है। दूसरी तरफ आपने देखा होगा कि संतरा ऊपर से एक ही लगता है पर जिस समय उसको छील कर देखते हैं तो फाँके अलग–अलग होती हैं। इस तरह सन्त ऊपर से

बेशक अलग–अलग हों लेकिन एक ही ज्ञान इन सबके हृदयों में बसा होता है। वे हर समय यह यही वाणी बोलते हैं कि –

गुरु गुरु गुरु करि मन मोर, गुरु बिना मैं नाही होर।।
गुर की टेक रहहु दिनु राति, जाकी कोइ न मेंटै दाति।।

साध संगत, संसार की जितनी भी दातें हैं, वे सब समाप्त हो जाती हैं पर जो हमको सद्गुरु से ज्ञान की दात मिली है, वह कभी भी समाप्त नहीं होने वाली है। इसलिए यही अरदास, प्रार्थना करें कि ऐ दातार, हम सबको भक्ति का दान देना। अन्य वस्तुएं तो आपने दे ही देनी हैं, खाना–पीना, कपड़े और मकान भी देना है, ये तो आपकी कृपा है के जो आपको नहीं जानता, मानता उसको भी आप दे रहे हैं। हम पर यह कृपा करना कि हमें सन्तों का संग मिलता रहे, आपकी भक्ति मिलती रहे तथा हमारा ध्यान इस प्रभु–निरंकार के साथ जुड़ा रहे।

8

साध संगत, जिस पर दातार की पूर्ण कृपा होती है वही भक्ति के ऐसे रंग में रंगा जाता है, जो रंग कभी उतरने वाला नहीं होता। जैसे कहा है कि –

लाल रंग तिस कउ लगा जिस के वडभागा।।
मैला कदे न होवई नह लागै दागा।।

लाल रंग ऐसा होता है जिसको कोई दाग नहीं लगता। भक्ति को ऐसा ही रंग कहा गया है। जो इस रंग में रंगे जाते हैं, वे फिर हर समय सबके भले की ही कामना करते हैं। यह जो युग जा रहा है, जिसको हम 20वीं सदी (शताब्दी) कहते हैं इसमें हर कोई केवल अपना भला चाहता है, अपने परिवार के भले की कामना करता है। और अपने भले के लिए दूसरे का नुकसान करने से भी चूंकता, जिस कारण मनों में ईर्ष्या, नफरत बढ़ जाती है और ऐसा वातावरण बन जाता है, जिसके लिए कहा गया है कि –

खैह–खैह जलन बांस अंगियारा।

कहने का भाव, बाँस के जंगलों को आग नहीं लगाई जाती, जब जोर से हवा चलती है, बाँसों के आपस में रगड़ खाने से आप ही आग लग जाती है और जंगल के जंगल भस्म हो जाते हैं। इसी तरह जब हमें एक–दूसरे का वर्ण अच्छा नहीं लगता, जात अच्छी नहीं लगती, दूसरे को देखकर खुशी नहीं होती है तो मनों में जलन होती है। सन्त–महात्मा हमें बताते हैं कि आप किन बातों में पड़ गए हो, आप तो सभी एक पिता परमात्मा की सन्तान हो, भाई–भाई हो। ये हमें मिल–जुलकर बैठना सिखा देते हैं। जैसे कहा है –

चहु वरना कउ दे उपदेसु।।
नानक उसु पंडित कउ सदा अदेसु।।

सन्तजन चारों वर्णों को इकट्ठा करके बैठा देते हैं। इस युग में तो घर के चार–छः सदस्य भी इकट्ठे होकर नहीं बैठ सकते। यह महात्मा का, पैगम्बर का बिरद (कार्य) होता है कि चारों वर्णों को इकट्ठे करके बैठा देता है। ये केवल कहते ही नहीं, इनकी कहनी और करनी बराबर होती है। ये सारी दुनिया के भले की कामना करते हैं और जैसे–जैसे भला करते चले जाते हैं, इनका भी भला होता जाता है। दूसरों के लिए सुख मांगते हैं तो इनके अपने घर सुखों से भर जाते हैं, दूसरे की खुशी मांगते हैं तो ये खुद खुशी से भरपूर हो जाते हैं।

साध संगत, युगों–युगों से महात्मा हमें यही शिक्षा देते आए हैं। महात्मा की नज़र ऐसी होती है कि वह शरण में आने वाले से कुछ नहीं पूछता कि तू क्या कर्म करता है, क्या खाता है, क्या पहनता है? महात्मा केवल इन्सान की भावना देखता है। महात्मा का कर्म यह होता है कि वह हमारी आत्मा, जो जन्मों–जन्मों से बिछुड़ी हुई है, इसको परमात्मा के साथ मिला देता है। यह आत्मा परमात्मा की अंश है, परंतु परमात्मा से बिछुड़ने के कारण शरीरों के चक्करों में घूम रही है। एक शरीर छोड़ती है तो दूसरे में दाखिल हो जाती है, दूसरे से निकलती है तो तीसरे में दाखिल हो जाती है, और यह चक्कर चलता ही रहता है। इस आत्मा का ठिकाना केवल परमात्मा है। इसमें ही इसने समाना है। जैसे हम घर से निकलते हैं तो हमारे सामने कोई निशाना होता है, हम सीधे वहाँ चले जाते हैं। अगर निशाना न हो तो एक–दूसरे से पूछते हैं, कभी एक गली में चले जाते हैं, कभी दूसरी गली में चले जाते हैं, कभी एक मौहल्ले में चले जाते हैं, कभी दूसरे मौहल्ले में चले जाते हैं, पर जब कोई जानकार मिल जाता है तो वह हमें उस घर तक पहुँचा देता है जहाँ हमने जाना है। हम कहते हैं कि यह आदमी बड़ा अच्छा है, हम भटके तो बहुत पर इसके

कारण मंजिल पर पहुँच गये। इसी तरह ये महात्मा भी इस आत्मा को इसके घर पहुँचा देते हैं। आत्मा का घर यह नहीं कि चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना। कितने जीव–जन्तु पानी में रहते हैं, कितने कीड़े–मकोड़े धरती पर रेंगते–फिरते हैं, और भी कई योनियाँ हैं, पर वे आत्मा का घर नहीं है। आत्मा का घर तो केवल परमात्मा है। परमात्मा की चर्चा आपने सुनी है, इसे चाहे कोई ईश्वर कहे, चाहे कोई अल्लाह, गॉड, वाहेगुरु कहे, ये सारे नाम एक के ही हैं। हमें कभी–कभी भुलेखा पड़ जाता है और हम इन नामों के चक्कर में ही उलझ जाते हैं, जिससे कई बार बहुत नुकसान भी सहन करने पड़ते हैं। जैसे एक बार एक पेंडू (गांव का रहनेवाला) लड़का शहर जाकर पढ़–लिख गया, उसने फारसी की पढ़ाई की। जब घर वापिस आया तो कहने लगा कि माँ मुझे 'आब' दे। उसकी माँ को समझ नहीं आया कि यह क्या मांग रहा है और उसने 'आब–आब' करते प्राण त्याग दिये। आस–पड़ौस वाले इकट्ठे हो गये। पूछा कि क्या हुआ तो कहने लगी – पता नहीं इतने साल बाद आया है, 'आब–आब' कर रहा था। बीच में ही कोई, जो फारसी जानने वाला था, कहने लगा कि माता, यह पानी मांग रहा था। फारसी में पानी को 'आब' कहते हैं। तो माथे पर हाथ मारकर माँ कहने लगी कि –

आब–आब कर मोयैं बच्चिया, ऐना फारसियां घर गाले।
जे मैं जाणदी बच्चा पाणी मंगदा, मैं भर–भर देंदी प्याले।

ये बातें तो छोटी–छोटी होती हैं पर इन्हीं बातों से ही इन्सान बखेड़े खड़े कर लेता है। कोई कहता है कि मेरा वाहेगुरु ठीक है, कोई कहता है मैं राम को मानता हूँ। कोई कहता है कि जो मैं बात कहता हूं वही सच है, तू जो कहता है वह गलत है। आज इन्सान इन्हीं बातों में उलझ गया है। यह आया किस काम के लिए था, करने क्या लग पड़ा? इन्सान को हीरे जैसा जन्म मिला था पर इसे वह कौड़ियों के बदले गँवाकर चला जा रहा था। इसका कारण यही है कि यह परमात्मा को भूल गया है और माया से इसने लिव लगा ली है। इसी तृष्णा धीरे–धीरे बढ़ती जाती है। महात्मा इसकी अवस्था के बारे में लिखते हैं कि –

पहिलै पिआरि लगा थण दुधि।।

भाव जब बच्चा पैदा होता है तो सबसे पहले इसे दूध की ही सोझी होती है, उसको और कुछ नहीं चाहिए होता, फिर –

दूजै माइ बाप की सुधि ।।

फिर उसको माँ–बाप की समझ आ जाती है उसके बाद –

तीजै भया भाभी बेब ।।

तीसरी अवस्था में उसको अपने बहिन–भाई और रिश्तेदारों का पता लग जाता है।

चउथै पिआरि उपनी खेड ।।

चौथी अवस्था में खेलने की ओर उसका प्यार पड़ जाता है, और

पंजवै खाण पीअण की धातु ।।

पांचवी अवस्था में खाने–पीने का शौक पड़ जाता है।

छिवै कामु न पूछै जाति ।।

छठी अवस्था में इस पर काम–वासना प्रभाव डालने लगती है, और

सतवै संणि कीआ घर वासु ।।

सातवीं अवस्था में इसको क्रोध आने लग पड़ता है कि मैंने सबके साथ ऐसा किया और उन्होंने मेरे साथ ऐसा किया।

अठवै क्रोधु होआ तन नासु ।।

आठवीं अवस्था में गुस्सा शरीर का नाश कर देता है। जैसे कहा भी है –

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै ।।

फिर साध संगत ऐसी अवस्था आ गई और आगे कहा है –

नावै धउले उभे साह ।।
दसवै दधा होआ सुआह ।।

और अन्त में यह शरीर समाप्त हो जाता है। तृष्णाओं के वश में आकर यह मानव जीवन व्यर्थ चला जाता है। इन तृष्णाओं से इन्सान को केवल सद्गुरु का ज्ञान ही बचा सकता है इसलिए अरदास करें कि हमें पूर्ण सद्गुरु ने कृपा करके जो ज्ञान की दात प्रदान की है, हर पल इसका ध्यान करें ताकि लोभ–लालच, तृष्णा हमारे जीवन में प्रवेश ही न कर सके।

9

साध संगत, भक्त हमेशा ही सद्गुरु के ऊपर अपना विश्वास रखकर, भरोसा रखकर अपने जीवन को आगे से आगे बढ़ाते चले जाते हैं। जैसे कहा है – 'अग्नां को तांग पिछां फिर न मुड़ना', आगे आगे ही कदम बढ़ाना है पीछे नहीं रखना है। यही भावना सन्तों–महापुरूषों की रहती है और जो इस भावना को लेकर चलता है, उसके सभी कार्य रास हो जाते हैं। जैसे पढ़ते हैं –

सन्तां दे कारज आप खलोया हर कम करावण आया।

सद्गुरु उनके सभी काम सिद्ध कर देता है। हमने अपने अन्दर ही देखना है कि हमारा गुरु के ऊपर कितना विश्वास है! कहीं हम जुबान से ही गुरु का सिमरण तो नहीं कर रहे हैं! क्या हमारे हृदय में भी गुरु समाया हुआ है कि नहीं, क्या ये हमारे रोम–रोम में है या केवल जुबान तक ही! हमने अपने अपने हृदय में झाँक कर देखना है क्योंकि हमारा दिल साथ–साथ गवाही देता चला जाता है। जब हम प्रेम में होते हैं, तब भी दिल गवाही देता है और जब हमारे अन्दर कोई नफ़रत, कोई घृणा आ जाती है, तब भी मन ने साथ–साथ चलना होता है।

साध संगत, यह मन बहुत चालाक होता है इसीलिए इसे बन्दर भी कहा गया है। आपने देखा होगा कि बन्दर कभी आराम से नहीं बैठता। कभी इधर भागता है, कभी उधर भागता है, कभी पेड़ पर चढ़ जाता है, कभी दीवार पर चढ़ जाता है लेकिन वही बन्दर जब नचाने वाले के हाथ आ जाता है तो जैसे वह नचाता है वैसे ही नाचता है। अगर मदारी उसके सिर पर कोई डंडा रख दे तो उसे भी कंधों पर लेकर चलता है

और यदि उसके सिर पर कोई गठरी रख दे तो उसे भी उठाये रखता है। मदारी को पता है कि उसने आराम से नहीं बैठना, इसको किसी न किसी काम में लगाये रखो।

इसी तरह मन की अवस्था है। यह कभी तो बहुत सज्जन बन जाता है और कभी बहुत बड़ा दुश्मन। आप मन की सभी अवस्थाएं जानते हो क्योंकि यह सबके अन्दर बैठा हुआ है। जब यह मन प्रेम के अन्तर्गत होता है और यदि कोई हमें ऐसी बात भी कह जाए जो हमें अच्छी नहीं लगती, तब भी हम हंसी–खुशी मान लेते हैं और यदि हमारे हृदय में किसी के प्रति रंजिश हो, कोई बुरी भावना हो तो वह कोई अच्छी बातें भी कहे तो वह भी हमें अच्छी नहीं लगती। पंजाबी की कहावत् है –

भांदी दा सब कुझ भावे न भांदी दा कुझ न भावै।

साध संगत, जो गुरु वाले होते हैं, जिनके सिर पर गुरु हा हाथ होता है, वे कभी भी मन के पीछे नहीं चलते बल्कि मन को अपने पीछे चला लेते हैं। सन्तों की ये बड़ाई होती है कि वे मन को वश में कर लेते हैं। इस मन की अवस्था को आप जानते हैं कि ये कभी न खुद टिक कर बैठता है न किसी को बैठने देता है। इसीलिए तो भक्त प्रार्थनाएं करते हैं कि हे प्रभु, ऐसे सन्तों का मिलन हो जिनके मिलने से तेरा नाम चेते रहे। ऐसे जन न मिलें जो खुद भी फिसल जाएं और हमें भी फिसला दें। ये दुनियां बहुत चिकनी होती है। आप सभी जानते हो कि यदि घर में या सड़क पर कहीं चिकनाई हो तो वहाँ गिरने की, फिसलने की सम्भावना हो जाती है। चाहे हम घर में गिरे जायें या बाहर गिर जायें, गिरना तो गिरना ही है।

इसी तरह यह दुनिया भी चिकनाई की तरह ही होती है। इसमें पल–पल फिसलने का डर होता है लेकिन जो सद्गुरु को अपना आधार व आसरा मान लेते हैं, गुरु उनको फिसलन से बचा लेता है लेकिन शर्त यही होती है कि हमारा विश्वास पूरा हो। जिस वक्त ये मन फिसल जाये, गिरावट की तरफ चला जाये तो कई बार शिष्य सोचता है कि गुरु ने बचाया क्यों नहीं? यदि शिष्य का अपना सिदक ही नही तो फिर गुरु क्या कर सकता है!

साध संगत, आपने देखा है कि यदि हम हाथ में बाँस ले लें और उसमें कितनी भी फूंकें मारते रहें, वह हवा एक तरफ से दूसरी तरफ नहीं जा सकती क्योंकि उसमें गांठ पड़ी होती है। इसी तरह हमारे कर्म ऐसे हेते हैं जो हमें गुरु से दूर ले जाते हैं। इसीलिए भक्त हर समय अरदास करते हैं, प्रार्थना करते हैं कि दातार यदि तू हमारी

जिन्दगी में आया है तो इस जिन्दगी में हमेंशा बने रहना क्योंकि ये जीवन बार–बार नहीं मिलता। कहा भी है –

कई जन्मां दे बाद चोला पाया वेखीं इसनूं दाग न लाई।

न जाने कितने जन्मों के बाद ये इन्सानी जन्म मिला है, इसकी हमें सँभाल करनी है, कहीं कोई दाग न लग जाये। श्रीगुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज के समय उन चालीस शिष्यों का नाम आप सुनते हो। जब युद्ध हो रहा था तो वह डर गये और गुरु को लिखकर दे दिया कि आज से न हम आपके शिष्य और न ही आप हमारे गुरु। जब वे घर आये, घरवालियों ने कहा कि आप क्यों चले आये हो, इस समय तो गुरुसाहिब को आपकी जरूरत थी तो उन्होंने कहा कि हम तो लिखकर दे आये हैं कि न तू हमारा गुरु, न हम तेरे शिष्य। यह सुनकर उनकी औरतों को गुस्सा आ गया और वे कहने लगीं कि आप लोग कायर हो, मौत से डर गये हो। आप घर बैठो हम जाएंगी, यही तो समय है गुरु के लिए मर–मिटने का। यह सुनकर सभी चालीस के चालीस सिख वापिस चले गये और शहीद हो गये। गुरुसाहिब ने जब उनको देखा तो किसी को कहा कि ये मेरा दस हजारी शिष्य है, ये मेरा बीस हजारी शिष्य है। उनके सरदार महासिंह के अभी अन्तिम श्वांस बाकी थे। गुरुसाहिब ने उससे कहा कि मांगो क्या मांगते हो? तब हाथ जोड़कर महासिंह ने कहा – हे दातार, वह चिट्ठी फाड़ दो जो हम लिखकर दे गये थे।

इतिहास गवाह है कि सद्गुरु ने वो चिट्ठी तो फाड़ दी लेकिन आज तक भी उनके नाम के साथ वह बेदावे की बात चली ही आ रही है। जैसे कोई कपड़ा फट जाता है, हम उस पर किसी और कपड़े की टाकी (कपड़े का टुकड़ा) लगा देते हैं। हमारा शरीर तो ढका जाता है लेकिन वह टाकी नज़र आती है। जो इन बातों को अपने दिल में बसा लेता है वह कभी भी डुलायेमान नहीं होता। भले ही कभी सर्दी आती है, कभी गर्मी आती है, कभी दिन आता है, कभी रात आती है, कभी आँधी होती है, कभी बरसात होती है, तो कभी सूखा पड़ा जाता है, भाव यह मौसम और ऋतुएं तो बदलती रहती हैं, लेकिन भक्त इनके साथ कभी नहीं बदलते। अपना विश्वास पक्का रखते हैं। अपने गुरु के साथ कदम से कदम मिलाकर चलते जाते हैं। अपने सिदक और भरोसे को हमेशा बढ़ाते चले जाते हैं।

साध संगत, गुरु की कृपा से ही सत्संग में बोला जा सकता है। यदि इन्सान कहे कि मैं कुछ बोल सकता हूँ, लिख सकता हूँ, तो इन्सान अपने आप कुछ नहीं कर

सकता। यह प्रभु हाथों को ताकत दे तब ही लिखा जा सकता है, जुबान को शक्ति दे, तब ही बोला जा सकता है, पाँवों को ताकत दे, तब ही चला जा सकता है। भक्त का अपने सद्गुरु पर कितना विश्वास होता है, उसके लिए महात्मा अक्सर यह उदाहरण देते हैं कि एक बार घोड़े के ऊपर कोई सवार जा रहा था। किसी ने उससे पूछा कि आपके घोड़े की कितनी टाँगे हैं तो वह उसी समय घोड़े से नीचे उतरा और गिनना शुरू कर दिया – एक–दो–तीन–चार। पूछने वाले ने कहा कि आप कितने वर्षों से सवारी कर रहे हो? घोड़े वाले ने उत्तर दिया – कई वर्षों से। पूछने वाले ने फिर कहा – अभी तक आपको इतना भी नहीं पता चला कि घोड़े की कितनी टाँगें होती हैं? घोड़े वाले ने कहा कि मेरे साहिब का क्या भरोसा, चार की तीन भी कर सकता है, चार की पाँच भी कर सकता है। भक्त का ऐसा ही विश्वास होता है, वह एक–एक कदम सद्गुरु के सहारे चलता है। हमने विश्वास की यह पुरातन कथाएं केवल सुनते नहीं रहना, दिल में भी बसाना है।

एक गुरसिख जो लंगर के लिए जंगल से लकड़ियां लेकर आता था और लंगर में जूठी थालियों में जो प्रसाद बच जाता था, वही इकट्ठा करके खा जाता था। एक दिन गुरुसाहिब ने वहाँ से गुजरते हुए उसे इस तरह खाते हुए देखा। गुरुसाहिब ने पूछा– सुना भाई महात्मा, प्रसाद छक रहे हो? गुरसिख कहने लगा कि महाराज, मैं तो यह जूठ इकट्ठी करके खा रहा हूँ। लंगर के लिए लकड़ी लेकर आया था और सोचा कि लंगर खा लूं। गुरुसाहिब ने कहा कि तूने जितनी सेवा की, वह तो लंगर खा लिया, फिर तेरी सेवा क्या हुई! उसने दूसरे दिन लकड़ी के दो गट्ठे इकट्ठे किये। एक लंगर में दे दिया और दूसरा बाज़ार में बेचकर खाना खा लिया। भाव सेवा की विधि भी सद्गुरु खुद ही समझाते हैं। जैसे लिखा है –

अपनी सेवा आप करावे जित ते होय दयाला

जिसके ऊपर ये मेहरबान हो जाता है, उससे ये खुद सेवा करवा लेता है नहीं तो यदि हम कहे कि हम कुछ सेवा कर सकते हैं तो हमारे बस में कुछ नहीं है। यदि ये हमें कुछ दे ही न तो हम क्या कर सकते हैं? रोटी के लिए भी लाचार हो जाते हैं। इसीलिए भक्त अभिमानरहित होकर, कर्त्ता भाव त्यागकर गुरु के दरबार में सेवा–सिमरण–सत्संग करता रहता है।

साध संगत, अभी आप सत्संग का आनन्द ले रहे थे। सत्संग मे ही मन को पावनता प्राप्त होती है। आप सभी जातने हैं कि हम दिन भर दुनिया के कामों में व्यस्त रहते हैं, जहां बेचैनी देने वाली ऐसी बातें होती है कि जिनसे अच्छा भला इन्सान भी परेशान हो जाता है। इसलिए तो संसार को काजल की कोठेरी, दुःखों की खान कहा जाता है। हम यह भी भली प्रकार जानते हैं कि यदि कालिख वाला बर्तन रास्ते में पड़ा हो तो हम कितना भी बचकर निकलने की कोशिश करें, फिर भी कहीं न कहीं न दाग लग ही जाता है। इसीलिए तो सन्तों ने हमेशा चेतावनी दी है कि –

बासनु कारो परसीऐ तउ कछु लागै दागु ।।

हमें याद दिलाया जाता है कि गंदगी के पास जाने से गंदगी ही प्राप्त होती है और जब हम साधु के संग में होते हैं तो मन की सभी शंकाएं समाप्त हो जाती हैं। सत्संग में महात्मा के प्रवचन, सन्तों के जीवन और भक्ति से भरपूर कथाएं सुनकर हमारे मन की सफाई साथ–साथ ही होती चली जाती है। हम यह भी भली प्रकार समझते हैं कि यदि घर में दो–चार दिन भी सफाई न की जाए या हम घर को बन्द करके कुछ दिनों के लिए बाहर चले जाएं तो वापिस आने पर खुद ही कहना पड़ता है कि घर में कितनी गन्दगी हो गई। घर के बर्तन, फर्नीचर आदि पर कितनी धूल जम गई है। तब हमें एक ही काम करना होता है कि जी–जान से जुटकर सफाई कर लें। इसी तरह यदि हम दो–चार दिन भी सत्संगत में न आएं तो मन के ऊपर भी मैल जम जाती है। हमें किसी में गुण ही नज़र नही आते। हर किसी में हमें अवगुण ही दिखने लग जाते हैं, चाहे वह कितने भी गुणों से भरपूर क्यों न हों। जब हम सत्संग में चले जाते हैं तो सन्त हमें फिर यह प्रेरणा देते है कि –

गुणा का होवै वासुला कढि वासु लइजै ।।
जे गुण होवनि साजना मिलि साझ करीझै ।।

भाव, किसी में चाहे कितने भी अवगुण हों, कोई कैसा भी इन्सान हो, हमें उससे भी गुण ही ग्रहण करने हैं। इसके उलट संसार का तो एक ही काम है–

अवगुणां दी बने गठरी, गुण ना बिहाजे कोय

इसीलिए सन्तों ने बार–बार प्रेरणा दी है कि हमने सन्तों से हमेशा गुणों को ही प्राप्त करना है और यही प्रार्थना करनी है कि हे परमपिता परमात्मा, जैसा जीवन

सन्तों–भक्तों का होता है, वैसा ही हमे मिले ताकि हमारा पार उतारा हो सके। हम जानते हैं कि एक कश्ती में रखकर यदि हम एक टन पत्थर या लोहा नदी से पार करना चाहें तो पार कर सकते हैं लेकिन बिना कश्ती के तो एक छोटा सा कंकर भी डूब जाएगा। धर्म के मार्ग पर साध संगत ही वह कश्ती है और सद्गुरु मल्लाह है जो हमें भवसागर से पार ले जाता है। अपनी लियाकत से, कर्मों से हम कितना भी जोर लगा लें, भक्ति की समझ नहीं आ सकती। केवल सद्गुरु की शरण में आने से ही इसका बोध होता है क्योंकि जब हम सद्गुरु के श्रीचरणों में नमस्कार करते हैं, बदले में सद्गुरु हमें सदा बढ़ने वाला धन, नाम–धन देते हैं। यह ही एक ऐसा धन है जो जिसके भी पास हो, वही धनवान होता है। दुनिया का धन जब थोड़ा–सा भी आ जाता है तो मनुष्य खुश होता है, जेब भर जाती है और सोचता है कि मैं धनवान हो गया हूँ लेकिन कुछ ही समय बाद जब वह खर्च हो जाता है, जेब खाली हो जाती है तो कहना पड़ता है कि मेरे पल्ले कुछ भी नहीं है।

सद्गुरु ने जब हमें यह ज्ञान दिया, हमारी आत्मा को परमपिता–निराकार के साथ जोड़ा, साथ ही साथ हमें जीवन जीने का रास्ता भी समझाया। आप सभी जानते हो कि जब कोई बीमार होता है तो हम उसे डॉक्टर के पास ले जाते हैं। डॉक्टर दवाई देता है, साथ ही साथ परहेज़ भी बतला देता है। वह कहता है कि कोई तली हुई चीज़ नहीं खानी, खट्ठा–मीठा नहीं खाना, ठंडा जल नहीं पीना, यह दवाई खा लेना तो ठीक हो जाओगे। कुछ दिनों के बाद जब हम डॉक्टर के पास जाते हैं और कहते हैं कि मैंने दवाई तो खा ली थी लेकिन आराम नहीं आया। तब डॉक्टर पूछता है कि परहेज़ भी किया था या नहीं? यदि हमारा उत्तर यह हो कि डॉक्टर साहिब मैंने परहेज़ नहीं किया, जीभ का स्वाद रखने के लिए मैंने थोड़ी खटाई खा ली, थोड़ा तला हुआ खा लिया, ठंडा पानी भी पी लिया तो फिर डॉक्टर तो यही कहेगा कि तू ठीक कैसे होगा?

इसी तरह जब सद्गुरु यह ब्रह्मज्ञान देता है तो कुछ बातें न करने को भी कहता है, किसी की निन्दा नहीं करनी, किसी को नीचा नहीं देखना, हर किसी को इज्ज़त करनी है। जब हम इन बातों का ध्यान रखते हैं तब ही भक्ति मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं। यह तो आप सभी जानते हो कि जब हम किसी की तारीफ़ करते हैं तो वह अपनी ही तारीफ़ होती है। जब किसी को हम प्यार देते हैं, वह हमें भी कई गुणा ज्यादा प्यार देता है। यदि हम निन्दा करेंगे तो स्तुति कभी नही मिल सकती। यहाँ पर कई भक्त तीस साल से, कई पचास साल से लगे हुए हैं, पर जबसे भी इस सद्गुरु के श्रीचरणों में हम आये हैं, गुरु ने हमेशा ही हमें यही शिक्षा दी है –

संतन सिउ मेरी लेवा देवी संतन सिउ बिउहारा ।।
संतन सिउ हम लाहा खाटिआ हरि भगति भरे भंडारा ।।

जैसे दुनिया में भी लाभ और हानी का हम ध्यान रखते हैं। किसी को सम्मान चाहिए, किसी को यह चाहना होती है कि औलाद अच्छी निकले और उसका नाम दुनिया में रोशन हो, किसी को यह ध्यान है कि मेरी जायदाद इतनी हो कि सभी देखें। भाव दुनिया में नाम बड़ा करने वाले तो हमें बड़े मिल जाएंगे लेकिन प्रभु को जानकर नाम कमाने वाला कोई-कोई होता है। चाहे कितने ही युग बीत जायें, ऐसा नाम कमाने वाले हमेशा आसमान में सितारे की तरह चमकते हैं। जैसे हनुमान जी, मीरा जी, शबरी जी और अनेकों भक्त, जिनका आज भी हम नाम लेते हैं, उन्होंने केवल नाम की कमाई की और गुरु के साथ नाता जोड़ा। यदि गुरु ने दिन कहा तो उन्होंने भी दिन माना, रात कही तो रात मानी। ऐसे भक्त दुनिया में हमेशा पूजे जाते हैं। जिसने दिल से गुरु की पूजा की, सारा जगत उसकी पूजा करता है। मैं तो कई बार बैठी-बैठी सोचती हूँ कि मुझे तो यह भी याद नहीं कि किस वक्त मैंने थोड़ा सा शायद गुरु का सत्कार किया हो, और उसके बदले में सद्गुरु ने मुझे क्या-क्या नहीं दिया। यदि हमारा ध्यान पूर्णतौर पर सद्गुरु के श्रीचरणों में लगा रहे तो किसी भी बात की कमी नहीं आ सकती। महात्मा केवल एक ही प्रार्थना करते हैं कि दातार कृपा करना, हमें संतों का संग मिलता रहे क्योंकि संतो के संग से ही संतों जैसा आचरण मिल सकता है। सन्त हमेशा ऊँचाईयों की तरफ़ ले जाते हैं। यह बात जानते भी केवल सन्त ही हैं। भक्त तो एक ही भावना रखते हैं कि हे सद्गुरु, हमें तो यह भी पता नहीं कि बन्दगी क्या होती है और कैसे करनी होती है। वे तो मानते हैं कि सद्गुरु की एक मुस्कान मिल जाये तो बन्दगी हो जाती है।

यह बन्दगी दूर-दूर बैठे हुए भी एक जैसी ही है। जहाँ-जहाँ भी एक-एक महात्मा चला गया, दातार की कृपा से उसने उस जगह इतना बड़ा परिवार बना लिया। भक्त को इसी बात की खुशी होती है कि जिस काम के लिए दुनिया में आया था वह काम उसका अपना भी हो गया है और वह औरों को भी इसका लाभ दे रहा है। दातार ने हमें जो जीवन दिया है, इसका हम पूरा लाभ उठाएं। संसार के काम भी होते रहेंगे, वह तो सत्गुरु हर एक के करता है लेकिन पर-उपकार करना ही सन्त का परम कर्तव्य बन जाता है। दातार आप सबको ऐसी परोपकार की भावना प्रदान करे।

साध संगत, अभी तक आपने सद्गुरु की महिमा को सुना। सद्गुरु की महिमा ही हृदय को शान्त करने वाली, ठंडक देने वाली और सुख देने वाली होती है। दुनिया में और जितनी भी बातें होती है। परेशानी देने वाली होती हैं, दुःख देने वाली होती हैं। संसार में तो हर रोज़ ऐसा ही देखने को मिलता है कि भाई-भाई को नहीं पहचानता, बेटी माँ को नहीं पहचानती, लेकिन यह जो लाखों-लाखों का परिवार सद्गुरु नें हमें दिया है, इसमें बैठकर हमें भक्ति की प्रेरणा मिलती है और मन का सकून मिलता है। अवतार बाणी में भी लिखा है -

गुरसिक्ख नूं जद गुरसिक्ख मिलदा वेख के चाअ चढ़ जांदे ने।

यदि हम इन बातों को अपने हृदय में बसा लें तो फिर कोई भी ऐसा कारण नहीं रहता जिससे हमें परेशानी हो। यह तो श्रद्धा और विश्वास का विषय है। जब हमने गुरु के ऊपर विश्वास किया तो गुरु ने हमें निराकार के साथ जोड़ दिया। जब हम निराकार के साथ जुड़ गये तो यह साकार रूप में विशाल परिवार मिल गया जिसमें बैठकर हमें आनन्द भी मिलता है और खुशी भी मिलती है। बचपन में सुना करते थे कि कोई पूछता था कि ये आपके कौन हैं तो जवाब देता था - मेरे 'गुरु भाई'। उस समय तो शायद 'गुरु भाई' वाली बात समझ में नही आती थी लेकिन अब पता चला है कि 'गुरु भाई' किसको कहते हैं? जो खुद गुरु के साथ जुड़ा हो और हमें भी जोड़ दे। वह खुद भी गुरु को खुश कर लेता है और हमें भी ऐसा मार्ग बता देता है। तभी तो कहा है कि गुरु को रिझा लेने वाले को किसी चीज की भी कमी नहीं रहती क्योंकि वह एक दातार के साथ जुड़ा होता है जिसके लिए कहा गया है कि -

ददा दाता एकु है सभी कउ देवनहार।।

भाव कि ये एक ही दाता है जो सबको देने वाला है। ज्ञानी को देता है, अज्ञानी को भी देता है। जो इसको जानते हैं उनको भी देता है, और जो नहीं जानते उनको भी देता है। सारी ही सृष्टि इसकी है, इसीलिए सबकी देखभाल करता है।

साध संगत, सद्गुरु ने तो हमें यहाँ तक कह दिया है कि मैंने आपका लोक सुखी और परलोक सुहेला कर दिया है लेकिन कई बार भक्त के मन में यह सवाल आ जाता है कि कैसे पता लगे कि लोक-परलोक सुखी हो गया है। इसे स्पष्ट करते हुए सद्गुरु ने कहा है कि ये तो मैं गारण्टी लेता हूँ कि आपका परलोक सुहेला हो गया। अब आप योनियों में नहीं पड़ोगे लेकिन इस लोक में जैसे-जैसे आपका व्यवहार होगा,

वैसा–वैसा ही फल आपको मिलेगा। दूसरे को सुख दोगे तो सुख मिलेगा, दूसरे को खुशी दोगे तो खुशी मिलेगी। यदि औरों की मदद करोगे तो आपकी मदद के लिए भी सभी आ जाएंगे।

साध संगत, संतों के साथ हमने केवल भक्ति का लेन–देन करना होता है क्योंकि जहाँ भक्ति आ जाती है, वहाँ अज्ञानता नहीं टिक सकती। और बातें जीवन में उसी समय आ जाती हैं जब भक्ति की कमी हो जाती है। इसीलिए तो कहा है –

भगत तेंरै मनि भावदे दरि सोहनि कीरति गावदे।।

कहा है कि मन को वही भक्त अच्छे लगते हैं जो गुरु के दर आकर हरि–कीर्तन करें। आपने अभी सुना है कि सद्गुरु रहमत का खज़ाना होता है। यदि ये ऐसा न होता तो पावन 'बाणी' में यह न लिखा होता –

गुनु अवगनु मेरो कछु न बीचारो।।

गुरु का कर्म ही होता है बख्श लेना। जैसे मां का कर्म होता है कि बच्चा चाहे कैसा भी हो, चोर हो, कपटी हो, मां फिर भी उसे गोद में ही रखती है। इसी तरह सद्गुरु होता है –

जिवें मांवा नूं पुत्र प्यारे भगत प्यारे रब नूं।।

भाव जैसे मां को बेटा प्यारा हेाता है इसी तरह सद्गुरु को एक–एक गुरसिख, एक–एक भक्त प्यारा होता है। गुरु आदिकाल से भक्तों की लाज रखता आया है। हम देखते हैं कि यदि कोई बच्चा कोई गलती करे तो उसकी शिकायत करने के लिए लोग उसकी मां के पास आते हैं और कहते हैं कि देख, तेरे बेटे ने यह कर दिया, वह कर दिया। लेकिन मां नहीं मानती। वो यही कहती है कि मेरे बेटे ने कुछ नहीं किया, कोई गलती नहीं की। ये रीति शुरू से ही चलती आ रही है। इसी तरह हम चाहे जैसे भी हों, सद्गुरु ने हमें चरणों के संग लगा रखा है। हम सभी जानते हैं कि यदि सद्गुरु ने ये महान कृपा न की होती तो आज हम भक्ति का आनन्द नहीं ले सकते और मन की मति के कारण भक्ति के रास्ते पर पीछे रह जाते। अब हमने भक्ति की तरफ ही लगे रहना है।

साध संगत, मैंने कई बार ये प्रमाण दिया है कि यदि हमारा मुख सूर्य की तरफ हो तो परछाई हमारे पीछे–पीछे भागती है इसी तरह यदि हमारा ध्यान गुरु के श्रीचरणों में लगा रहे तो दुनियावी पदार्थ हमारे पीछे–पीछे अपने आप चले आते हैं। ये प्रकृति और पदार्थ संतों के लिए ही बने हैं और संतों की बदौलत ही ये दुनिया आराम और खुशी ले रही है। आपने यह भी देखा है कि यदि सूर्य की तरफ हमारी पीठ हो तब हमारी परछाई आगे–आगे भागती है, हम चाहे लाख कोशिश करें, उसको पकड़ नहीं सकते। इसी तरह जितने भी सुख–साधन दातार ने हमें दिये हैं, गुरु की तरफ मुख रहे तो ये अपने आप मिलते रहते हैं।

आओ अरदास करें, दातार कृपा करना कि हमें एक–दूसरे की कद्र करनी आ जाए, एक–दूसरे का सत्कार करना आ जाए। हम सभी मिल–जुलकर बैठ सकें क्योंकि आज इसी बात की कमी है। अब तो दुनिया का कोई भी कोना ऐसा नहीं होगा जहाँ सच की आवाज न पहुँची होगी। मुझे भी दुनिया में भ्रमण करने के कई अवसर प्राप्त हो चुके हैं। देखा है कि आज पूर्ण तौर पर हर जगह यह आवाज पहुँच चुकी है। हमने अब यही मांग मांगनी है कि हे प्रभु, तोड़ निभ जाये। जैसे आपने इस कश्ती में बिठाया है, हम बैठे रहें। ऐसा न हो कि हम खुद ही समुद्र में छलांग लगा दें, फिर तो हमें कोई बचा नहीं सकता। हमें जैसे गुरु ने कश्ती में बिठाया है, यदि बैठे रहें तो बड़े आराम से किनारे पहुँच जाएंगे। फिर न तो समुद्र की लहरें हमें डर दे सकेंगी और न ही समुद्र के जानवर हमारा कुछ बिगाड़ सकेंगे। इसलिए दातार कृपा करना, हमें ज्ञान के इस जहाज़ में बिठाये रखना। बचपन में अक्सर हम यह भजन बोला करते थे कि –

साडे गुरां ने जहाज़ बणाया, आओ किसे पार लंघणा।।

उस समय न हमें इस जहाज़ का पता था, न ही पता था कि गुरु किसको कहते हैं, लेकिन जबसे गुरु के श्रीचरणों में आये हैं, इसने ज्ञान प्रदान किया है, नाम के जहाज़ में बैठा दिया है, तब पता चला है कि सद्गुरु कितना मेहरबान होता है। अपने कर्मों से, एक ही नहीं, चाहे अनेक जन्म हम लगे रहते, यह कहना कभी भी सम्भव नहीं था कि हमने निराकार को जान लिया है, लेकिन गुरु की कृपा से हम पूरे विश्व को आवाज़ दे रहे हैं कि हमने इस ब्रह्म को जाना है। सुनने वाले जब कहते हैं कि ये इतना आसान तो नहीं है प्रभु को जानना, इसके लिए तो कई जन्म लग जाते हैं, कठिन तपस्या करनी पड़ती है तब जाकर कहीं प्रभु जानने की बात सोची जा सकती है। उस समय भक्त का एक ही उत्तर होता है कि अपनी करनी से नहीं जाना जा

सकता परन्तु गुरु की कृपा से सहज में ही जाना जा सकता है। हमें पूर्ण सद्गुरु मिला है इसलिए हर समय यही अरदास किया करें कि–

जे तू तुठा कृपा निधान ना दूजा वेखालि।।
एहा पाई मू दातड़ी नित हिरदै रखा समालि।।

भाव कि जो तूने जो प्रभु दिखाया है इसे हृदय में सम्भाल लें। कहीं ऐसा न हो जैसे किसी ने किसी को पारस मणी दी और कहने लगा कि इसे सम्भाल कर रखना। लेने वाले ने उसको एक अच्छे कपड़े में लपेटकर सम्भाल कर रख दिया। जब वह देने वाला व्यक्ति वापिस आया तो देखकर हैरान हो गया कि यह तो अभी उसी झोंपड़ी में रह रहा है। इसको तो बहुत अमीर होना चाहिए था। उसने पूछा– मैंने तो तुझे पारस दिया था जिसे यदि लोहा छू जाए तो वह सोना बन जाता है। तो वह कहने लगा – अच्छा वही पत्थर का टुकड़ा, वो तो मैंने सम्भाल कर रखा हुआ है। मुझे तो उसका पता हीं नहीं था, पहचान नहीं थी। साध संगत, यह तो पारस की बात है जो लोहे को सोना बना देती है लेकिन सद्गुरु के चरणों में आने के बारे में तो कहा गया है –

पारस में और संत में बड़ो अन्तरो जान।
उह लोहयो कंचन करे उह करे आप समान।।

कहते हैं कि पारस तो लोहे को सिर्फ कंचन करता है लेकिन सद्गुरु अपने समान कर देता है। ये तो आप हमेशा देखते हो कि सद्गुरु के मंच पर अगर एक छोटा सा बच्चा भी बैठ जाए, चाहे उसे अच्छी तरह बात भी न करनी आती हो, उसे भी सद्गुरु की तरह नमस्कार होती है, सेवा होती है। उसी तरह उसके सामने बैठकर भक्ति की जाती है। दुनिया में कोई भी और ऐसा गुरु, नहीं, जिसकी स्टेज पर शिष्य बैठ सकता हो। यह तो दातार ने कृपा की है कि अपने समान बना लिया है। इसके बावजूद भी यदि हम मन करके इधर–उधर हों तो फिर अपनी ही कमजोरी होती है। जैसे किसी इन्सान ने किसी को दो थैले दे दिये और कहा कि एक में अपने अवगुण डालकर उसको आगे रखना और एक में गुण डालकर पीछे रखना लेकिन शायद हमसे भूल हो गई। हमने अपने गुणों वाला थैला आगे रख लिया और अवगुणों वाला थैला पीछे रख लिया। नतीजा, हम और गुण ग्रहण नहीं कर पाये। जिस कारण हमारे पास अवगुण ही अवगुण हो गए और गुण बहुत कम रह गये। आज यही प्रार्थना करने की आवश्यकता है कि हे प्रभु, हमें सुमति दो कि हम दूसरों के गुण और अपने

अवगुण देखा करें। कृपा करना, यदि मेरे कदम डगमगा जायें तो मुझे सम्भाल लेना, मुझे फिसलने मत देना।

साध संगत, सद्गुरु का यह कर्म होता है कि जब भी शिष्य इसे बुलाये ये पहुँच जाता है। जैसे द्रोपदी को राजसभा में नग्न करने की कोशिश की गई। पहले वह पाँडवों की तरफ देखती रही, राजा की रतफ देखती रही जो कुछ न कर सका लेकिन जब सभी सहारे छोड़कर श्रीकृष्ण जी को याद किया तो वह नंगे पाँव भागकर उसकी मदद के लिए आए। भक्त ने फिर भी गिला किया कि आप पहले कहाँ थे? तब कृष्णा जी ने कहा कि पहले आपने बुलाया कहाँ था? अभी आपने ध्यान किया तो मैं पहुँच गया हूँ। भाव, सद्गुरु युगों-युगों से भक्तों की लाज रखता आया है पर हम ही कई बार गलती कर जाते हैं। इसी प्रकार की एक घटना है कि एक बार शिवजी भगवान और पार्वती जी नदी के किनारे जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि वहाँ कुछ बच्चे नहा रहे हैं और पानी का आनन्द ले रहे हैं। वहाँ एक बच्चा किनारे पर बैठा हुआ था। उसकी आँखों में रोशनी नहीं थी। पार्वती जी शिवजी भगवान को कहने लगीं कि प्रभु सभी बच्चे खेल रहे हैं और यह एक बेचारा नदी के किनारे बैठा है, आप इसको भी आँखों की रोशनी दे दो। शिवजी भगवान कहने लगे - रहने दो, यह बच्चा इसी तरह ही ठीक है। लेकिन पार्वती जी ने जिद की और कहा कि आप इसको ठीक कर दो। शिवजी ने वैसा ही किया। आखों की रोशनी आते ही उस बच्चे ने नदी में छलांग लगा दी और दूसरे बच्चों को पकड़-पकड़कर पानी में डुबकियां देने लगा। यह देखकर पार्वती जी ने माना कि प्रभु मेरे से गलती हो गयी, आप ठीक ही फरमा रहे थे। भाव सद्गुरु ही भले-बुरे की पहचान रखता है। हमें सद्गुरु के ऊपर विश्वास आ जाए।

साध संगत, दूध को और बुद्धि को खराब होते देर नहीं लगती। एक पतीला दूध का भरा हो और उसमें एक बूंद भी खटाई की पड़ जाये तो पूरे का पूरा दूख खराब हो जाता है। फिर वह दूध न तो दूध का काम देता है न दही का। इसीलिए भक्त प्रार्थना करते हैं कि हमारा विश्वास बना रहे। हम जितना भी बोलते जायें, कीमत तो कर्म की है। जितना-जितना हम कर्म करते जाएंगे, उतना-उतना फल मिलता चला जाएगा। गुरु की चाल हँस की चाल होती है जो समुद्र से हीरे-मोती ही प्राप्त करता है। बगुले की चाल भी हमने देखी है कि वह नदी के कनारे आंखे मूंद कर एक टांग पर खड़ा होता है पर अगर हम यह समझें कि वह बन्दगी कर रहा है तो वह बन्दगी नहीं है, वह तो मछली की खोज में है कि कब मछली दिखे और कब उसे निगल जाये। सद्गुरु ने हमें हँस की चाल चलने का आदेश दिया है। कौआ और कोयल भी

देखने में एक जैसे होते हैं। लेकिन कोयल की मीठी वाणी, सुरीली आवाज़ हर एक को अच्छी लगती है। इसी प्रकार भक्त की वाणी, सुरीली आवाज भी हर एक को अच्छी लगती है। जैसे हाथी की चाहे कोई पूँछ पकड़ ले या कोई और अंग, वह अपनी मस्ती में चलता रहता है, इसी तरह गुरसिख भी सहज भाव से बिना इधर–उधर देखे गुरु के दर्शाये मार्ग पर चलता रहता है।

12

साध संगत, भक्ति भावना ही दुनिया में एक ऐसी भावना है जो सबके मन को शक्ति प्रदान करने वाली है। इसीलिए कहा है–

कबीर गुरु की भगत कर छड्ड मिथ्या रस चोज।
बार–बार नहीं पाईये मानुष जन्म की मोज।

भाव यह इन्सानी जन्म बार–बार नहीं मिलता, इसीलिए इस जन्म में रहकर भक्ति कर लें। सिर्फ इन्सान को ही यह समझ प्रदान की गई है, चेतावनी दी गई है। किसी ने भी कभी पशु–पक्षी या कीड़े–मकोड़े आदि को भक्ति के लिए नहीं कहा। जब–जब भी आदेश आया, केवल इन्सानों के लिए आया है कि इस प्रभु को जानकर इसकी भक्ति कर लो। साध संगत, यह प्रभु तो हमारे अंग संग है, केवल इशारे की आवश्यकता होती है। इसीलिए जब–जब भी महात्मा आए, उन्होंने इन्सान को केवल ये इशारा ही दिया। महाभारत की ही बात ले लें। इसमें कोई शक नहीं कि अर्जुन कितने ही वर्ष श्रीकृष्ण जी के साथ रहा, पर उनको अपना मित्र ही समझता रहा लेकिन जब कुरूक्षेत्र के मैदान में मन में यह दुविधा आ गई कि मेरे ये नाती रिश्तेदार सभी मेरे हाथों से ही मारे जाएंगे तो उस समय उसकी इस अज्ञानता को भगवान श्रीकृष्ण जी ने ज्ञान का इशारा देकर, विराट स्वरूप दिखाकर दूर किया और समझाया कि तू कौन होता है मारने वाला या पैदा करने वाला? ये सब करने वाला तो मैं हूँ। धरती से लेकर आसमान तक मेरा स्वरूप है और यह सारी की सारी प्रकृति जड़ और चेतन मेरे ही अन्दर है। सत्य को जानकर उसी वक्त अर्जुन बोल उठा कि हे प्रभु तेरे आगे को नमस्कार, तेरे पीछे को नमस्कार, तेरे ऊपर को नमस्कार, तेरे दाँये–बाँये को नमस्कार। यह नमस्कार पहले नहीं हुई। जब ज्ञान–चक्षु प्राप्त हुए, समझ मिली तक ही नमस्कार शुरू हुई।

साध संगत, ज्ञान की यह समझ केवल गुरु से ही प्राप्त हो सकती है। अगर इन्सान ये समझे कि मैं पाठ–पूजा, जप–तप करके प्रभु को जान सकता हूँ तो ये तो बहुत दूर

की बात है। अपने आप हम एक छोटा सा काम भी नहीं कर सकते। जैसे हमने मोटर गाड़ी ही चलाना–सीखना होता है तो हम भले उसका स्टेयरिंग घुमायें, अपने पाँव से क्लच या ब्रेक वगैरह भी लगायें लेकिन जब तक कोई सीखा हुआ ड्राईवर हमें बताता नहीं कि यह सब कैसे करना है, तब तक हम सीख नहीं सकते। साध संगत, गुरु कृपा से ही इस परमपिता परमात्मा को जाना जा सकता है। मीरा ने जब श्रीगुरु रविदास जी से इस ज्ञान की सोझी प्राप्त की, तो पाँव में घुँघरू बाँधकर नाच–नाचकर गली–गली में कहा –

पायो री मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सत्गुरु कर कृपा अपनायो।

इसी तरह कबीर साहिब ने जाना और आवाज़ दी –

अब तउ जाइ चढे सिंहासनि मिले है सारिंगपानी।।
राम कबीरा एक भए है कोई न सकै पछानी।।

कहने का भाव है कि जानकर ही आवाज़ दी जा सकती है। आज भी सत्संग में आप महात्मा जब भगवान की बात करते हैं तो साथ ही साथ अपने गुरु की चर्चा भी करते हैं कि हमारी ज़िन्दगी में ऐसा गुरु आया है जिसने हमें परमात्मा की जानकारी करा दी। जानकारी हासिल करके कोई बात कही जाये तो वह आप बीती वाली, विश्वास वाली बात होती है। यदि केवल सुनी–सुनाई या पढ़ी–पढ़ाई बात कही जाये तो उस पर शक हो सकता है।

साध संगत, यह प्रभु का विधान है कि जैसा कोई बीज डालेगा वैसा ही फल पायेगा। जो दूसरों का भला मांगता है उसका भला अपने आप हो जाता है क्योंकि वह भले का बीज डालता है। जो दूसरे के लिए दुःख माँगता है उसके आगे दुःख ही दुःख आते हैं। जो ये माँग माँगता है कि किसी को भी किसी बात की कमी नहीं आये तो उसको भी कोई कमी नहीं आती क्योंकि इन्सान दूसरों के लिए जैसी भी कामना करता है, उसको वही फल मिलता है।

एक बार किसी इन्सान ने कामना की कि मेरे घर में भैंस हो। उसके घर भैंस हो गई लेकिन पड़ौसी के घर दो भैंसे हो गयीं। फिर उसने मांगा कि मेरे दो घर बन जायें, पड़ौसी के चार बन गये। इसे देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ कि उसके पड़ौसी

को उससे दुगुना क्यों मिल रहा है। फिर उसने उलटी माँग करनी शुरू कर दी और अपने घर से सब गँवा बैठा और फिर पश्चाताप करने लगा कि मैंने ऐसा क्यों किय। यदि मैं पहले की तरह माँगता रहता तो मेरा घर भी भरा रहता। लेकिन ये जो मन है ये कभी भी भलाई नहीं सोचता, बुराई की तरफ ही भागता है। इसीलिए तो कहा है कि ऐ इन्सान, तू इस मन को गुरु के हवाले कर दे–

मनु बेचै सतिगुर कै पासि।। तिस सेवक के कारज रासि।।

जो अपने मन को गुरु के हवाले कर देता है उसके सारे काम हो जाते हैं। सुदामा ने इस मन को गुरु के हवाले किया और इतिहास गवाह है कि उसके सारे कार्य रास हो गए। धन्ने भगत ने गुरु पर विश्वास कर लिया, सद्गुरु उसकी खेती करने पहुँच गया। यह दातार अपने आप किसी न किसी घट में बैठकर भक्तों के कार्य कर जाता है। जिस–जिसने भी अपने गुरु के ऊपर सिदक या भरोसा किया, विश्वास किया उसी का बेड़ा पार हो गया पर जिसका अपना विश्वास डुलायमान हो, वह क्या पार होगा? ऐ इन्सान, यदि तू मन करके गुरु पर भरोसा रखेगा और हर समय गुरु से कृपा की याचना करेगा तो मीरा, हनुमान और शबरी की तरह तू भी अमर हो सकता है। जिस–जिस ने भी इस परमात्मा का नाम लिया, उसका अपना नाम भी गुरु के नाम के साथ जुड़ गया। आपने देखा है कि भारत में जितने रामजी के मन्दिर हैं उससे भी शायद ज्यादा हनुमान जी के मन्दिर हैं। जिस तरह रामजी की पूजा हो रही है, उसी तरह हनुमान जी की भी पूजा हो रही है। इसका कारण केवल यही है कि हनुमान जी ने अपने गुरु की पूजा की, उनकी हर बात को सत्य–सत्य करके माना और किसी भी हुक्म को टाला नहीं। ऐसे भक्त जलते हुये दीये के समान होते हैं। हजारों बुझे हुये दीये भी उस जलते हुये दीये का संग करके रोशनी देने वाले बन जाते हैं। भक्ति का यही तो फल है।

पीऊ दादे का खोलि डिठा खजाना।।
ता मेरै मनि भइआ निधाना।।
खावहि खरचहि रलि मिलि भाई।।
तोटि न आवै वधदो जाई।।

और सभी खज़ाने तो खाली हो जाते हैं, लेकिन ये नाम का धन जितना ज्यादा हम खर्च करते हैं उतना ही यह बढ़ता जाता है, इसमें कभी कोई कमी नहीं आती। दुनिया की दौलत तो लाखों से हज़ार और हज़ार से सैकड़ें रह जाते हैं और ऐसा

समय भी आता है कि एक कौड़ी भी पास नहीं रहती, लेकिन यह नाम का खज़ाना कभी कम नहीं होता। इसीलिए तो कहा है–

नाम धनु जिसु जन कै पलै सोई पूरा साहा।।

केवल यह नाम का धन ही साथ जाने वाला है। बड़े–बड़े राजा–महाराजा दुनिया से खाली हाथ गये। उन्होंने पूरी दुनिया तो फतह कर ली लेकिन मृत्यु को फतह नहीं कर सके।

सिकन्दर के बारे में हमने सुना है कि जब उसका अन्तिम समय आया तो वह अपने मंत्री को कहने लगा कि ये धन–दौलत, हीरे–मोती सभी बाँध दो, मैं अपने हाथ लेकर जाऊँगा। मंत्री ने कहा कि राजन, इनमें से तो आप एक तिनका भी साथ नहीं ले जा सकते। उसने दूसरे मंत्री को बुलाया और कहा – इसको सज़ा दी जाये क्योंकि इसने मुझे पहले क्यों नहीं बताया कि मैं खाली हाथ जाऊँगा। मैं किस कारण लूट–मार करता रहा, युद्ध करता रहा? तब उस मंत्री ने कहा – राजन, अभी तो आपके पाँव कब्र में हैं तब भी आप मुझे सज़ा देने की सोच रहे हैं और अगर मैं पहले आपको यह कहता तो मेरा क्या हाल होता? उस समय सिकन्दर ने कहा कि जब मैं कर जाऊँ तो मेरे दोनों हाथ कफ़न से बाहर निकाल देना ताकि मुझे देखकर दूसरों को सबक मिले कि सिकन्दर भी दुनिया से खाली हाथ गया, कुछ भी साथ लेकर नहीं गया।

साध संगत, ये केवल एक सिकन्दर की बात नहीं है, हमारी सबकी यही जीवन–गाथा है। जितने भी आज तक दुनिया से गये हमारे गुरु–भाई, दोस्त, रिश्तेदार, सभी खाली हाथ ही गये। ये दुनिया तो ऐसा मेला है इसमें जितना–जितना समय मिला है, गुज़ार कर हर कोई जा रहा है। इसीलिए तो बार–बार इन्सान को कहा जाता है कि–

हीरे जैसे जनमु है कउडी बदले जाई।।

ऐ इन्सान, इस हीरे जैसे अनमोल जन्म को कौड़ियों के दाम मत गंवा। किसी संत–महात्मा की, रहबर की तलाश कर जो तेरी आत्मा को परमपिता के साथ जोड़ दे और तुझे आवागमन से, चौरासी से बचा ले।

साध संगत, संतों के जब भी दीदार होते हैं तो मन में खुशियाँ आती हैं। क्योंकि गुरसिखों का दातार पर पूर्ण विश्वास, पूर्ण भरोसा, पूर्ण सिदक होता है। अभी आपने विश्वास की बातें सुनी। विश्वास के बगैर तो ये दुनिया भी नहीं चल सकती। इसीलिए महात्मा बार–बार यही प्रेरणा देते हैं कि भक्त का विश्वास अपने सद्गुरु के ऊपर बना रहे। कहा है कि –

नानक भुसरीआ पकाईआ पाईआ थालै माहि।।
जिनि गुरु मनाइआ रजि रजि सेई खाहि।।

गुरसिख अपने गुरु को मना लेता है, रिझा लेता है। साध संगत, गुरु के सामने तो हर कोई कहता है कि दातार ये तन भी तेरा, मन भी तेरा, पर इधर तो उससे भी ऊँची बात कह दी है कि जिस गुरसिख ने भी सद्गुरु को रिझाया है, उसके आगे भी अपना मन–तन कुरबान हो। साध संगत, ये केवल कहने, सुनने या पढ़ने की बातें नहीं होती, इनमें एक ऐसी सच्चाई छुपी हुई होती है जो केवल गुरसिख ही जान सकता है। आम संसार को इन बातों की समझ नहीं आती। इसीलिए महात्मा अपनी भक्तिका आनन्द लेते हुए सारे संसार को यही आवाज़ देते जाते हैं कि ऐ इन्सान, तुझे न दौलत से सुख मिलेगा, न जायदाद से और न रंग रंगीली दुनिया से। हाँ, अगर तेरी प्रीति गुरु के साथ होगी, विश्वास होगा तो जितने भी दुनियां में नज़ारे नज़र आते हैं, ये सभी तेरे लिए सुखदायी बन जायेंगे।

साध संगत, आप जानते हैं कि गुलाब का फूल कितना सुन्दर होता है, खुशबू भी कितनी होती है लेकिन उसके साथ काँटे भी लगे होते हैं। वह कांटो की परवाह न करता हुआ अपनी महक ही देता रहता है, खुशबू ही देता रहता है, खूबसूरती और कोमलता ही देता रहता है। उसमें कोई भी अन्तर दिखाई नहीं देता। जैसे एक गीतकार ने भी कहा है कि – 'जिन्होंने भी फुलों नूं गल नाल लगाया कंडया दी ओह परवाह नहीं करदे'। भाव, जिन्होंने भी फूलों को अपने गले से लगा लिया है, वे कांटों की परवाह नहीं करते हैं।

साध संगत, कांटों में भी एक गुण होता है आप जानते हैं कि किसी पौधे पर गुलाब का फूल लगा हो। हम चाहते हैं इसे तोड़ लें, तो जब तोड़ते हैं तो कांटों की चुभन हमारे हाथों में होती है। भाव, उस समय वे कांटे फूल के रखवाले भी बन जाते हैं। इसी प्रकार कई बार संसार की जो रूकावटें होती हैं उन्हीं में अपना बचाव भी छिपा

होता है। कभी कभी दोस्त, मित्र घरवाले भी रूकावटें बन जाते हैं। जैसे बाबा नानक जी के इतिहास को देखें। जब भी यात्रा पर निकलते थे, घरवाली बच्चों को लेकर सामने खड़ी हो जाती थी और दूसरी तरफ बेबे नानकी जी का इतना विश्वास, कितना अकीदा बना कि जब भी उन्होंने याद करना, गुरु नानक देव जी ने पहुँच जाना।

साध संगत, हम कितने बड़े भागों वाले हैं कि हमें ऐसा सद्गुरु मिला है जिसने ना हमारा कोई ऐब देखा, न बड़ा–छोटा देखा, ना जाति–मज़हब देखा और हमें अपने साथ जोड़ लिया। आज दुनिया में कोई किसी की थोड़ी सी गलती भी देखता है तो उसको नजदीक नहीं आने देता। पर गुरु की प्रथा युगों युगों से यही चली आयी है, चाहे द्व ापर युग हुआ, चाहे त्रेता हुआ, चाहे कलयुग हुआ, हर युग में इसके पास चाहे गणिका जैसी आ गई, अजामिल पापी जैसा आ गया, कबीर जैसे आ गए, राजा जनक जैसे आ गए, इसने सबको गले से लगा लिया। इसी तरह ही इस युग में भी चाहे जैसा भी इंसान इसकी शरण में आया, इसने कभी किसी से कुछ नहीं पूछा। इसका बिरद है कि 'जो शरण में आवे जिस कंठ लावे, एह बिरद स्वामी संदा'। जैसे धोबी कपड़े धोता है तो जैसा भी मैला कुचैला कपड़ा होता है, उसको धोकर साफ कर देता है, उजला बना देता है क्योंकि उसका ये कर्म है। इसी तरह सद्गुरु का भी यही कर्म होता है कि इंसान चाहे खामियों से भरा हो, गलतियों का पुतला हो, उसे कभी यह नहीं कहता कि तूने ये गलती की है, तू मेरे पास नहीं आ सकता। भाव, सद्गुरु बख्शिन्द होता है, जो हमें अपने साथ चलाए चलता है। ये मां का पार्ट भी अदा करता है और बाप का पार्ट भी अदा कर देता है, और भाई बन्धु का पार्ट भी अदा कर देता है और हमेशा यही शिक्षा देता है कि हमने सभी के लिए भले की ही अरदास–प्रार्थना करनी है।

साध संगत, आप सन्तों–महापुरूषों की प्रार्थना ही दुनिया को बचाये चली जाती है, नहीं तो इस समय तो दुनिया का कोई भी कोना खाली नहीं है, जहाँ उथल–पुथल नहीं हो रही। साध संगत, सन्त ही ऐसे रहम दिल होते हैं जो सारे संसार के लिए भला चाहते हैं। अन्य कोई किसी के लिए भले की कामना नहीं करता। कभी–कभी तो माता–पिता भी, बच्चों से कोई ऐसी बात हो जाती है तो उनके लिए भी भला मांगने को तैयार नहीं होते। न माता–पिता बच्चों के लिए, न बच्चे माता–पिता के लिए। पर सद्गुरु का कार्य समुद्र मंथन का है। समुद्र में आप जानते हैं कि कितनी छलें होती हैं, कितने–कितने भयानक जानवर उसमें होते हैं, पर समुद्र सबको समेट कर बैठा

होता है। इसी तरह हम इंसान जैसे भी हैं, सद्गुरु सबको साथ लेकर चल रहा है। इसलिए हम हर समय यही अरदास, यही प्रार्थना करते रहें कि–

विणु तुधु होरू जि मंगणा सिरि दुखा कै दुख।।
देहि नामु संतोखीआ उतरै मन की भुख।।

14

साध संगत, परमात्मा ईश्वर निराकार के बिना हम जो कुछ देखते हैं वह असत्य है। देखने वाली आंखें भी असत्य हैं और ये दुनिया भी असत्य है। इसीलिए महात्मा जगह–जगह ये प्रेरणा देते हैं कि ऐ इंसान तुझे जो हीरे जैसा जन्म मिला है, इसको तू कौड़ियों के बदले गंवा कर नहीं जाना। इस जन्म में तूने प्रभु की पहचान करनी है, ईश्वर की पहचान करनी है। पहली बार ये आवाज़ सुनी जाय तो बड़ा अचम्भा सा होता है कि ये कैसी आवाज़ है। जब से पैदा हुए हैं तब से किसी ने नहीं कहा कि परमात्मा की जानकारी हो सकती है। यह केवल संत ही कह सकते हैं कि प्रभु प्राप्ति हो सकती है। जिसको भी सद्गुरु की कृपा द्वारा प्रभु–ज्ञान मिल जाता है, वे फिर दुनिया वालों को आवाज़ देते हैं क्योंकि इनके हृदय में परोपकार होता है।

साध संगत, जिनके पल्ले में यह सच्चाई होती है, वे ही परोपकार कर सकते हैं। यह वो सच्चाई नहीं है जो हम अक्सर बात करते हुए कहते हैं कि मैं सच बोल रहा हूँ, मैं झूठ नहीं बोल रहा। साध संगत, हमें पता होता कि उसमें कितना झूठ होगा, कितना सत्य होगा? सत्य तो केवल परमात्मा है, जिसको रोज ही पढ़ते हैं – 'आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु, नानक होसी भी सचु'। यह पहले भी था, आज भी है, आगे भी रहेगा। साध संगत, इसलिए इंसान को कहा गया है कि तू मोह माया की नींद से जाग जा क्योंकि तू जाग जायेगा तो तुझे परमात्मा के दीदार हो जायेंगे। संसार में जब किसी इन्सान से प्रभु प्राप्ति की बात की जाती है तो वह आगे से यही कह देता है कि– मैं तो बड़ा पापी हूँ। मैं कैसे प्रभु तक पहुंच सकता हूँ? पर, जब इतिहास देखते हैं तो ऐसे नाम भरे हुए हैं। 'गणिका पापिन होय के पापां दा गल हार परोता'। उसने अपने गले में माला ही डाली हुई थी पापों की। इसी तरह 'अज़ामल पापी जग जाने माहे निसतारा' और भी ऐसे अनेकों नाम लिए जाते हैं, जेसे सज्जन ठग, भुमिया चोर आदि, उनका भी निस्तारा हो गया। दरअसल हमारा भी कसूर नहीं, क्योंकि जबसे हम पैदा हुए हैं, हमारे कानों में भी यही आवाज़ पड़ी कि प्रभु परमात्मा को नहीं जाना जा सकता, किसने जाना है, कौन जान सकता है? महात्मा हमें समझाते हैं कि आत्मा का भी आकार नहीं है, और परमात्मा का भी

आकार नहीं। ये आत्मा जब निराकार को जान लेती है तो दुनिया में इसका आना सफल हो जाता है और जीवन सफर सुखदाई हो जाता है।

साध संगत, ज़िन्दगी का सफर तो गुज़ारना ही है। चाहे हँस के गुज़ार लें चाहे रो कर गुज़ार लें। यह जैसे दो इन्सान रेलगाड़ी में सफर कर रहे थे। एक ऐसा था जो सफर के दौरान सारा रास्ता पास बैठे इंसान को खिलाता भी रहा, उसको हँसाता भी रहा, अपनी सीट पर भी बिठा लिया और दूसारा इंसान साथ बैठने वाले के साथ सारे रस्ते लड़ाई–झगड़ा करता रहा, गाली–गलौच करता रहा और सबको परेशान कर दिया। सफ़र दोनों ही कर रहे हैं। स्टेशन आयेगा दोनों उतर जायेंगे। बात दोनों की चलेगी,लेकिन एक की शोभा होगी और दूसरे की बात और तरह से होगी। इसलिए हम अपना यह जीवन सफर दूसरों को सुख देकर तय करें। कभी किसी पर दोष न लगायें बल्कि हमेशा स्वयं के सुधार की बात ही सोचें।

साध संगत, कई बार तो इंसान भगवान के ऊपर भी दोष लगाना शुरू कर देता है। एक बार दोपहर के समय कोई इंसान जा रहा था। एक घना सा आम का पेड़ आया तो उसके नीचे लेट गया। सोचन लगा – इतना बड़ा पेड़ और इतने छोटे–छोटे आम के फल! और उधर तरबूज की बेल बेचारी इतनी छोटी और उस पर इतने बड़े–बड़े तरबूज! भगवान भी अजीब है। इतने में चिड़िया आई, उस आम के पेड़ पर बैठी, चोंच आम में लगाई तो आम नीचे गिर पड़ा और उसके नाक पर लगा। अब नाक से खून बहने लगा। उसी समय ध्यान में आया कि प्रभु तू जो करता है वही ठीक है। यदि ऊपर बड़े तरबूज लगाये होते तो फिर आज मेरा क्या हाल होता। इसलिए इस प्रभु–निरंकार का हर समय धन्यवाद की करना चाहिए, इसी में हमारा भला है।

15

साध संगत, ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, निराकार, जिसे हम अनेकों नामों से पुकारते हैं, कोई इसे अल्लाह कहता है, कोई वाहेगुरु कहता है, कोई राम कहता है और कोई रहीम कहता है, यही इस दुनिया का रचनहार है और हमने केवल इसकी ही भक्ति करनी है। भक्ति में बहुत आनन्द होता है। अनेकों और बातें हम भले सुबह से लेकर शाम तक करते रहें उनसे बेचैनी ही मिलती है, उदासी ही मिलती है पर जिस समय हम ईश्वर निराकार परमात्मा की बातें करते हैं तो हमारे मन को सुख, चैन और आनन्द मिलता है। महात्मा हमें समझाते हैं कि ऐ इन्सान, यदि तू मन के कहने पर चलेगा तो मन तुझे ऐसे दो–राहे पर फेकेंगा कि फिर तू सम्भाल नहीं

सकेगा। इसलिए कहा है – गुरु की मत तू ले अयाने भक्त बिना डूबे बहु स्याने। भाव यदि गुरु की मति लेगा तो तू ऊचाईयों को छुएगा।

साध संगत, यह शिक्षा किसी खास जात–मज़हब वाले इंसान के लिए नहीं है बल्कि हर इंसान के लिए है। वैसे भी ये जितने भी जात–मज़हब हैं वे सभी हमने बनाए हैं, दातार ने कोई जात–मज़हब बनाकर नहीं भेजा। यदि इस प्रकार भेजता तो हमारे शरीर पर कोई निशान लगाकर भेजता जिससे मालूम हो जाता कि यह हिन्दु, सिख, ईसाई अथवा मुसलमान है। नहीं, साध संगत, दातार ने तो केवल इन्सान बनाकर भेजा है। इसलिए हमें भी किसी महात्मा की जाति नहीं पूछनी। हम बच्चों को स्कूल में भेजते हैं तो यह नहीं देखते कि मास्टर हिन्दू, सिख या ईसाई है अथवा इसने टोपी पहनी है, पगड़ी बांधी है, पायजामा, पैन्ट या धोती पहनी है। हमें केवल यही होता है कि हमारे बच्चे उस्ताद से पढ़ जाएं। इसलिए हमने जाति–पाति, उँच–नीच आदि की बातों में पड़कर अपना अमोलक जन्म नहीं गवां देना। महात्मा समझाते हैं कि ऐ इन्सान अगर तू इस जन्म में आकर प्रभु को नहीं ध्यायेगा तो इस प्रकार पीसा जायेगा जैसे कोल्हू में तिल पीसे जाते हैं। संतों को ऐसी बातें कहने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है क्योंकि हम यहाँ आकर गफ़लत की नींद में सो जाते हैं। साध संगत, इस प्रभु का तो बिरद है कि इसने हमें देना ही देना है। हमें खाने के लिए देना है, पहनने के लिए देना है। यह तो कहा भी है कि –

जल विच जन्त उपाये के, तिनां वी रोजी दे।

भाव जल में अनेकों जीवन–जन्तु रह रहे हैं, उनको कौन रोटी बनाकर दे रहा है? कौन राशन पानी दे रहा है? सभी पेट भर रहे हैं, सभी जी रहे हैं। केवल हमें ही चिंता लगी रहती है कि मुझे यह करना है, वह करना है। भाव यह नहीं कि हमें कोई काम नहीं करना है। काम–काज तो हमने सारे ही करने हैं, दुनिया पर बोझ बनकर नहीं बैठा जाता परन्तु ध्यान इस प्रभु में लगाकर रखना है। कहा भी है –

हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजल नालि।।

भाव कि पांव से चलकर जाना है, हाथों से कार्य करना है तथा ध्यान निरंजन (परमात्मा) के साथ लगाना है। ध्यान तो उसी का करेंगे जिसे हम जानते होंगे। जिसको हम जानते ही नहीं, उसका ध्यान कैसे करेंगे? जिस प्रकार हमारे पड़ौस में ही कोई रहता हो और हम उसे जानते न हों तो हमारा ध्यान उसकी ओर नहीं जाता।

परन्तु जब उससे जान पहचान हो जाती है तो दूर कहीं खड़ा कोई उसका नाम लेता है तो हमारे कान खड़े हो जाते हैं और उसी समय उसका चेहरा सामने आ जाता है जिसका नाम लिया जाता है। इसीलिए कहा है –

जब देखा तब गावा। तउ जन धीरजु पावा।।

और भी कहा है –

गुर बिनु गिआनु न होवई ना सुखु वसै मनि आई।।
नानक नाम विहूणे मनमुखी जासनि जनमु गवाई।।

मनमुख उसे कहते हैं जो मन के कहने पर चलता है, जो किसी की भी नहीं सुनता। जैसे रावण ने भी किसी की नहीं सुनी थी। उसकी पत्नी भी उसे समझाती रही, भाई भी कहते रहे, रिश्तेदार भी कहते रहे, कि तू ये काम मत कर पर उसने किसी की नहीं मानीं। मन के कहने पर चला तो क्या पाया! उसके लिए तो कहा है कि –

इकु लख पूत सवा लखु नाती।
तिह रावण घर दीआ न बाती।।

इतना परिवार होते हुए भी उसके पीछे कोई दीपक जलाने वाला नहीं रहा। उसे किस चीज की कमी थी? इतना पढ़ा लिखा विद्वान पण्डित था, छः शास्त्रों का ज्ञाता, चार वेदों का वक्ता था, सोने की लंका थी। परन्तु अपने साथ कुछ भी नहीं ले जा सका। खाली हाथ ही चला गया। साध संगत, दुनिया से केवल भक्ति ही साथ जाती है परन्तु कई बार इन्सान प्रभु को भूलकर छल–कपट कर धन कमाने को ही अपना लक्ष्य बना लेता है। महात्मा उसे समझाते हैं कि–

बहु परपंच करि परधनु लिआवै।
सुत दारा पहि आनि लुटावै।।
मन मेरे भूले कपटु न कीजै।
अति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै।।

भाव, ऐ इन्सान तू इतने कपट, छल किस लिए करता है? किसके लिए? बीबी के लिए? बच्चों के लिए? पर अन्त समय इनमें से किसी से कुछ नहीं पूछा जायेगा, न ही इन्होंने तेरा साथ देना है। ये सभी तो यहीं रह जाते हैं। तूझ से ही हिसाब पूछा

जायेगा। इसी प्रकार की एक घटना है कि एक बार एक महात्मा ने किसी गुरसिख से कहा कि चल भाई मेरे साथ प्रचार पर चल, तो वह कहने लगा कि मैं कैसे जा सकता हूँ, मुझे तो मेरा परिवार बहुत प्यार करता है, उन्हें कैसे छोड़ सकता हूँ। महात्मा ने कहा कि चल इसकी भी परीक्षा करा देता हूँ। तू घर जाकर कहना कि मेरे पेट में बहुत दर्द है और थोड़ी देर के लिए सांस रोक लेना। जिस समय घर में रोना-पीटना शुरू हो जायेगा तो मैं आ जाउँगा। उसने घर जाकर ऐसा ही किया और जिस समय रोना-पीटाना आरम्भ हो गया तो वह महात्मा भी पहुंच गये। कहने लगे कि क्या हुआ? तो घर वाले कहने लगे अभी-अभी बाहर से आया था और कहने लगा कि मेरे पेट में दर्द है और एक दम समाप्त हो गया। आप तो पहुंचे हुए महात्मा हैं, आप ही कुछ करो और असे जीवित कर दो, हम इसके बिना नहीं रह सकते। वह महात्मा कहने लगे - अच्छा, एक दूध का कटोरा लेकर आओ। वे दूध का कटोरा ले आये। महात्मा ने कहा कि जो भी इसे पी लेगा, वह मर जायेगा और यह बच जायेगा। उसने पहले उसकी पत्नी को कहा कि तू कहती है कि इसके बिना तेरा जीवन किसी काम का नहीं, इसलिए यह दूध का कटोरा तू पी ले। वह कहने लगी-चलो, इतने ही संयोग थे। छोटे बच्चे हैं। महाराज, आप तो जानते हैं कि पिता तो बच्चों को नहीं पाल सकता, माता जो जैसे भी हो सके, मेहनत मजदूरी करके बच्चों को पाल लेती है। फिर उन्होंने बुजुर्ग माता-पिता को कहा कि आप यह दूध पी लो तो तुम्हारा बेटा जीवित हो जायेगा। वह कहने लगे - महाराज, चलो इतने ही सम्बन्ध थे, छोटे-छोटे पोत्र-पोत्रियाँ हैं, इनके साथ ही दिल लगा रहता है, इनके साथ ही दिल लगा रहता है, इनको ही खिलाते रहेंगे। उसके मित्र भी बहुत रो रहे थे चिल्ला रहे थे। महात्मा उन्हें कहने लगे कि तुम ही पी लो, तुम्हारा दोस्त बच जायेगा। वे कहने लगे कि हम ही चले गये तो फिर क्या रहा। चलो, इसकी इतनी ही उम्र थी जो बिता कर चला गया है। वे महात्मा कहने लगे कि फिर मैं ही पी लूं? सभी कहने लगे - हां महाराज, आप ही पी लो। साध संगत, था तो वह दुध ही। जब उन्होंने पी लिया तो कहने लगे कि - उठ भई गुरसिख। जिस समय वह उठा तो महात्मा पूछने लगे - भई तूने सब कुछ सुन लिया है? वह बोला हां महाराज। महात्मा ने पूछा - अब तेरी क्या सलाह है? वह कहने लगा - बस महाराज, मैंने दुनिया को ठोक बजाकर देख लिया है, दुनिया मतलब की है। महात्मा ने समझाया कि हमने दुनिया भी रखनी है और यह भक्ति भी करनी है।

साध संगत, हम कहते हैं कि परमात्मा अंग संग है, हर जगह मौजूद है। पत्ते पत्ते में है, डाली-डाली में है। यह कण-कण में समाया हुआ है। बाबा नानक ने कहा है कि यह हाथ से भी निकट है। मुसलमान भाई कहते हैं - शाहरग से भी नज़दीक

है। इतना निकट होते हुए भी हमें दिखाई क्यों नहीं देता? क्योंकि हमें ऐसी आंख ही नहीं मिली। जैसे कहा है कि – **बुलया शोह तैथों वख नहीं, पर वेखन वाली अख नहीं।**

साध संगत, देखने वाली आंख कौन देता है? यह पूर्ण सद्गुरु देता है। तभी तो कहा है –

गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु।
हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु।।

हरि कृपा द्वारा जब ऐसे संतों का मिलाप होता है तब ही जीवन में रोशनी आती है। जिस समय प्रभु का ज्ञान हो जाता है तो अज्ञानता का अंधेरा दूर हो जाता है।

साध संगत, आप यह जानते ही हो कि अंधेरे में ठोकरें ही लगती हैं, चाहे हम घर में बैठे हों या बाहर गये हों। घर में ही हम देखते हैं कि कितना सामान पड़ा होता है, आराम करने के लिए पलंग पड़े होते हैं, और कई वस्तुएं मेज, कुर्सियां सुख देने वाली होती हैं। पर जिस समय रोशनी नहीं होती, उस समय हम कभी मेज के साथ ठोकर खाते हैं तो कभी दीवार से अपना सिर फोड़ लेते हैं और कभी पलंग के साथ ठोकर लगती है। परन्तु जब रोशनी होती है तब भी यह वस्तुएं तो उसी प्रकार पड़ी होती हैं लेकिन इम इधर–उधर से निकल कर सभी काम कर लेते हैं। इसी प्रकार साध संगत, जिस समय इन्सान का मन अंधेरे में पड़ा होता है तो फिर इसके अन्दर वैर ही वैर होता है, ईर्ष्या भी होती है, लालच भी होता है, लोभ भी होता है, क्रोध भी होता है। भाव, सभी कुछ इसके अंदर भरा पड़ा होता है। जिस समय इसे ज्ञान की रोशनी मिल जाती है, आंखें मिल जाती हैं तो ज्ञान का दीपक मन में जल उठता है और यह इन सभी विकारों से बच जाता है।

संत महात्मा परोपकारी होते हैं, इन्हें कोई लोभ लालच नहीं होता। इनके मन में परोपकार ही होता है। जिस प्रकार हम देखते हैं कि नदी बहती है, उसने कभी भी अपना पानी नहीं पिया, वृक्षों ने अपना फल नहीं खाया। इसी प्रकार इन संतों का जीवन भी परोपकार के लिए होता है, किसी लालच के लिए नहीं। श्री गुरु नानक देव जी ने भी घर के सुख–आराम छोड़कर स्थान–स्थान पर जा कर यही कहा – मैं गरीब का कोई सौदा ले लो। इसमें कोई शक नहीं है कि आज हम उन्हें पूजते हैं परन्तु उस समय दुनिया वालों ने उनकी जो हालत की, सभी जानते हैं। यह संसार की रीति है कि जीते जी भले कोई पानी के गिलास को भी तरसता रहे, परन्तु बाद

में उनके नाम पर यज्ञ लग जाते हैं। महात्मा कहते हैं कि तुम एक दूसरे की जीते जी कद्र करो क्योंकि जिसकी जीते जी कद्र करते हो, जिसकी सेवा करते हो उसको भी मालूम होता है और आपको भी मालूम होता है। बाद में उसे क्या मालूम कि तुम क्या–क्या करते हो। संतो के ऐसे प्रवचन हमारे जीवन को संवारने वाले होते हैं।

साध संगत, संतो का मिलाप हमें सुख देने वाला होता है। इसलिए ही कहते हैं कि –

गुरसिख नू जद गुरसिख मिलदा, वेख के चाअ चढ़ जान्दे ने।

भाव गुरसिख जिस समय भी एक दूसरे को मिलते हैं, भले रोज़ ही क्यों न मिलें, फिर भी उनको यही लगता है कि शायद सदियों बाद मिल रहे हैं। संतों की संगत एक ऐसा परिवार होता है जो सद्गुरु ने बनाया होता है और जिस समय हम परिवार को मिलते हैं तो खुशी होती है। संसार के रिश्ते तो हम देखते हैं कि आज के युग में एक दूसरे को कोई भी देखना नहीं चाहता। बच्चे माता–पिता को देखना नहीं चाहते, मां–बाप बच्चों को देखना नहीं चाहते। वे इनसे दूर रहना चाहते हैं और ये उनसे दूर रहना चाहते हैं, परन्तु गुरु की कृपा से संतों को एक दूसरे को देखकर चाव चढ़ जाते हैं। यही गुरसिखी की निशानी होती है, गुरु परिवार की निशानी होती है। गुरु परिवार वह नहीं होता कि जो पाँच–सात उनके बच्चे होते हैं वही गुरु परिवार होता हो। साध संगत, गुरु परिवार लाखों का होता है क्योंकि जो भी गुरु के साथ जुड़े होते हैं, वे उसके परिवार के अंग होते हैं। उनके लिए कहा भी गया है –

ऐकु पिता एकस के हम बारिक तू मेरा गुरहाई।

यह प्रभु परमात्मा निराकार ही एक पिता है और हम सभी इसकी सन्तान हैं। साध संगत, इसने कितना सुन्दर हमें साजा–संवारा है। कितनी सुन्दर आंखे और कान लगाये, मुंह लगाया। यदि इस प्रकार कर देता कि मुंह के स्थान पर नाक लगा देता या कान लगा देता तो इन्सान कितना बदसूरत लगता। इसने हमें कितना सुन्दर संवारा, बनाया पर हम दुनिया में आकर इसको भूल गये और माया की ओर लग गये। महात्मा हमें याद दिलाते हैं कि तुम्हें काम भी करना है और इसकी याद भी रखनी है जिसने हमें बनाया है, इस दुनिया में भेजा है, तभी हमारा यह जीवन सफल होगा।

साध संगत, सद्गुरु के मिलने से हमें सत्य की जानकारी होती है। इसलिए संत बार–बार इस बात को दोहराते हैं कि सद्गुरु के बिना सत्य की जानकारी नहीं होती, ज्ञान नहीं होता। जिसको पूर्ण सद्गुरु मिला, जिस समय भी मिला, जिस युग में भी मिला, इस मन को चरणों में लगाया। मन के सम्बन्ध में तो आप जानते हैं कि इस मन में कितना अहंकार भरा हुआ है, यह न तो झुकने के लिए तैयार होता है और न ही किसी की बात सुनने के लिए तैयार होता है भले ही इसे कितनी प्रेरणा दी जाये। यह कहता है कि जो कुछ मैं करता हूँ, जो मेरे ध्यान में आता है, बस वही ठीक है। जैसे आप जानते हैं कि जब घोड़े पर सवार बैठा होता है तो घोड़े की लगाम उसके हाथ में होती है। अगर वह लगाम खींच कर न रखे तो घोड़ा इतना बेकाबू हो जाता है कि सवार को ही गिरा देता है। इसी प्रकार इस मन पर भी यदि ज्ञान की लगाम खींच कर रखी हो तो मन कहीं भी भागना चाहे तो वह उसे भागने नहीं देती। जो मन को इस प्रकार रखता है वह बचा रहता है वरना साध संगत, आप तो जानते ही है कि मन हर समय ऐसी बातें ही सोचता है जो इंसान को गिराने वाली होती हैं। सद्गुरु का ज्ञान ही केवल ऐसा होता है जो इस मन को काबू में रख सकता है।

साध संगत, हम बचपन से सुनते आये हैं कि प्रभु कण–कण में है पर फिर भी हमें इसकी समझ नहीं आती थी। जब हम पूर्ण महात्मा की शरण में आ गये तो उन्होंने प्रकृति को एक तरफ किया और प्रभु को एक तरफ किया, तब इसकी समझ आई। जैसे आप जानते हैं कि दूध में घी होता है पर कभी हमने दूध के साथ सब्जी नहीं बनाई, दूध को कभी रोटी के ऊपर नहीं लगाया। समझदार गृहणी उस दूध को जमाती है, उससे दही बनता है। फिर उस दही को रिड़क (बिलो) कर उसमें से मक्खन निकाला जाता है, फिर उस मक्खन को गर्म करके घी बनता है और फिर उसके साथ सब्जी बनती हैं, उसे रोटी पर लगाया जाता है। इसी प्रकार साध संगत, यह निराकार–प्रभु इस दुनिया में समाया हुआ है। जब सद्गुरु इसे दुनिया में से निकाल कर हमें दिखाते हैं तो 'गुरु काढ तली दिखलाया' वाली बात हो जाती है। जैसे किसी के पास कोई वस्तु होती है तो वह कहता है कि फलां वस्तु मेरे पास है। हम कहते हैं कि हमें कैसे विश्वास हो? जब वह वस्तु निकाल कर हमारे हाथ पर रख देता है तो हमें विश्वास हो जाता है कि जिस वस्तु की यह बात करता था, वह इसके पास है। इसी प्रकार पूर्ण सद्गुरु भी हमें बता देता है कि यह तेरा भगवान है, तेरा परमात्मा है। इसे शस्त्र नहीं काटता, आग नहीं जला सकती, वायु नहीं उड़ा सकती, यह प्रलय के साथ प्रलय नहीं होता, उत्पन्न के साथ उत्पन्न नहीं होता। साध संगत, जब हमें यह बताया जाता है तो हम जो धर्म ग्रन्थ पढ़ते हैं, जिनको

सजदा करते हैं, गुरु मानते हैं, उनसे इसे मिलाते हैं, और जब यह मिल जाता है तो विश्वास आ जाता है। जब विश्वास आ जाता है तो फिर मक्खन शाह लुभाने की तरह छत्त पर चढ़ कर आवाज देते हैं –

गुरु लादो रे, गुरू लादो रे।

मीरा की तरह गली–गली, मोहल्ले–मोहल्ले में आवाज़ देते हैं –

पायो री मैंने राम रतन धन पायो।

कबीर की तरह कहते हैं कि –

अब तउ जाइ चढे सिंहासनि मिले है सारिंगपानी।
राम कबीरा एक भए है कोइ न सकै पछानी।।

कहते हैं कि अब राम और मेरे में कोई अंतर नहीं है पर पहचान कोई नहीं सकता। शरीरों में तो अन्तर होता है। शरीर पहचाने जाते हैं, रंग–रूप से पहचाने जाते हैं, पहरावे से, उठने बैठने से पहचाने जाते हैं। पर वे कौन सी पहचान की बात कर रहे हैं कि मेरे और राम में अंतर नहीं, कोई पहचान नहीं सकता। वह आत्मा–परमात्मा की पहचान है। आत्मा जब अपने मूल परमात्मा को जान लेती है तो फिर इसका ही रूप बन जाती है, फिर इसकी भटकन समाप्त हो जाती है। जैसे आप जानते हैं कि समुद्र में से पानी बादलों का रूप धारण कर लेता है, फिर जब बादल धरती पर बरसते हैं तो कहीं नाली में गिरते हैं, दरिया में गिरते हैं, पहाड़ों पर बरसते हैं। इसी प्रकार पानी का सफर चलता रहता है। अंत में जब वह पानी समुद्र में जा मिलता है तो शान्त हो जाता है, कहता है बस मैं अपने ठिकाने पर आ गया हूँ। इसी प्रकार यह आत्मा भी भटक रही है, चौरासी लाख शरीरों में भ्रमण करती है, और बेचैन रहती है। पर जब यह अपने प्रभु परमात्मा को जान लेती है तो शान्त हो जाती है।

साध संगत, संसार की तो ऐसी हालत होती है – 'बुरे काम को उठ खलोया, नाम की बेला तान के सोया'। भाव जब नाम की बात आती है तो सुस्ताने लग जाता है, यदि कोई और कार्य बतायें तो इंसान एक दम उठ भागेगा, सोचेगा भी नहीं मुझे याद है कि बचपन में बड़े बुजुर्ग कहा करते थे कि यदि कोई अच्छा काम करना हो तो एक

मिनट भी न लगाया करो। अच्छी तरफ कदम बढ़ें तो एक पल भी न सोचा करो। हां, यदि किसी बुरी ओर कदम बढ़ें तो सौर बार सोचो कि मैं इस तरफ कदम बढ़ाऊँ या न बढ़ाऊँ। आओ साध संगत, बड़े बुजुर्गों की बातें तो ऐसी होती हैं जैसे कहते हैं – आंवलों का खाया और बड़ो का कहा बाद में पता लगता है। आंवले में क्या गुण होते हैं और बड़े–बुजुर्गों की कही बातों में क्या भेद छुपे होते हैं, जिनको जान कर हम लाभ उठा सकते हैं, यह बाद में ही समझ आती है।

यह बातें केवल पढ़ने के लिए नहीं है। एक–एक बात भी अपने जीवन में ढाल लें तो जीवन संवर सकता है। वर्ना साध संगत कहा है कि – 'दुनिया गुजी भाह साईं। गुजी भाह, उस आग को कहते हैं जो ऊपर से दिखाई नहीं देती पर अंदर सुलग रही होती है। उसे कोई अनजाने में भी हाथ लगा दे या पांव रख दे तो चिल्ला पड़ेगा कि इसमें आग है, मेरा हाथ जल गया, मेरा पांव जल गया। पर सन्जन कहते हैं कि मेरे साईं ने, मेरे सद्गुरु ने अच्छा किया, मुझे इस अग्नि से बचा लिया। इसलिए भक्त हर समय इस सद्गुरु के, निराकार प्रभु के गुणों की ही चर्चा करते रहते हैं, कहते हैं कि –

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार।।

साध संगत, यह चन्द्रमा धरती के एक कोने से लेकर धरती के दूसरे कोने तक रोशनी देता है। सूरज की भी यही ड्यूटी है, वह भी रोशन देता है। सूरज की इतनी रोशनी होती है कि थोड़ी सी भी धूप निकलती है तो हम कहते हैं कि कितनी गर्मी है – हम जल रहे हैं। महात्मा कहते हैं कि ऐसे सूरज–चन्द्रमा हजारों ही निकल आयें तो भी मेरे सद्गुरु का तेज सबसे अधिक है। पर ये बातें उनकी समझ में ही आती हैं जिन्हें यह समझा देता है। अपने आप कोई बात समझ में नहीं आती। बचपन में हमें कितने ही समझाने वाले मिले, मां के रूप में, बाप के रूप में, भाई के रूप में, दोस्त मित्र या रिश्तेदार के रूप में, छोटी–छोटी बातें भी हमें समझाई गयी, तभी हमें समझ आई। इसी प्रकार गुरु जब हमें समझाता है कि ये तेरा परमात्मा है, तब ही हमें इसकी समझ आती है। लेकिन इंसान अगर मनमति में पड़ा रहे तो उसे कुछ समझ में नहीं आ सकता। साध संगत, इसी प्रकार किसी महात्मा ने बताया कि एक बार वे रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे थे। किसी के साथ वार्तालाप हुआ, परमार्थ की बातें हुई, सवाल जवाब हुए तो उनको कहा कि आप परमात्मा को जान लो। वह इंसान आगे से कहने लगा – परमात्मा को जान कर क्या होगा? महात्मा ने कहा कि फिर

तुम्हें आवागमन के चक्कर में नहीं आना पड़ेगा। तुम मुक्त हो जाओगे। तुम घोड़ा नहीं बनोगे, जीव–जन्तु, पशु–पक्षी आदि नहीं बनोगे तो वह फौरन बोल उठा कि अगर भैंस नहीं होगी तो दूध कहां से पीयेंगे? घोड़ा नहीं होगा तो सवारी कैसे करेंगे? हम जैसे हैं, वैसे ठीक हैं कहने का भाव इंसान जब बात करता है तब उस पर मन का इतना प्रभाव होता है कि वह उसे कोई अच्छी बात सुनने ही नही देता। मैं न मांनू वाली बात होती है पर साध संगत, मुझे याद है कि हमें तो यही प्रेरणा मिलती थी कि जहाँ बैठो खड़े होओ, जिससे भी बात करो, बड़े ध्यान से सुना करो। इससे ही तुम्हें अच्छी–अच्छी बातें सुनने को मिलेंगी। अगर ध्यान से नहीं सुनोगे तो कुछ भी हासिल नहीं होगा। जैसे अध्यापक क्लास में सभी बच्चों को एक जैसा पढ़ाता है। जो बच्चे ध्यान से अध्यापक की बातें सुनते हैं, वे तो पढ़ लिख कर लायक बन जाते हैं और जो ध्यान से नहीं सुनते, वे फेल हो जाते हैं और फिर दोष अध्यापक को देते हैं। साध संगत, अध्यापक ने जो पढ़ाया, उन्होंने नहीं पढ़ा इसलिए फेल हुये। इसी प्रकार साध संगत, समय–समय पर, हर युग में, सद्गुरु हमें जो शिक्षा देते आये हैं, अगर हम इन्हें जीवन में अपना लें तो हमारा लोक सुखी परलोक सुहेला हो जाता है।

17

साध संगत, गुरमुखों का सारा जीवन ही गुरमत के ढांचे में ढला होता है। आप सभी जानते हैं कि जो वस्तुयें सांचे में ढल कर आती हैं, वे बहुत खूबसूरत होती हैं, भेले वे कोई छोटी–छोटी टाफियां या बिस्कुट हों या बड़ी–बड़ी मशीनें। आपने देखा कि ईंटें भी जब सांचे में ढल कर आती हैं तो कितनी सुन्दर होती हैं परन्तु यदि उन्हें वैसे ही निकाल लिया जाये तो वे ठीपे से बन जाते हैं और कुछ पता नही लगता कि ये क्या चीज़ बनी हुई है। इसी प्रकार साध संगत, जो गुरमत के सांचे में ढलते हैं वे ही महापुरूष होते हैं, उनकी महिमा अपरम्पार होती है। उनमें इतनी खूबसूरती होती हैं, इतना प्यार होता है, इतना सत्कार होता है कि हम कहते हैं कि यह तो मुंह बोलती तस्वीरें हैं। जैसे साध संगत, हम किसी बड़े कलाकर की बनी हुई तस्वीर देखते हैं अथवा कोई मूर्ति देखते हैं तो यही कहते हैं कि कमाल की चीज़ है। कितने सुन्दर कान, आंखें, मुँह, हाथ, पैर सब कुछ कितना सुन्दर बना है। इसी प्रकार दातार ने यह इन्सानों रूपी सजीव मूर्तियाँ बनाई हैं। इन्सान ने भी कोई कभी नहीं छोड़ी अपनी ओर से दातार की बराबरी (रीस) करने में। इन्सान को जो कुछ दिखायी दिया वह तो इसने बना लिया, उसी तरह नाक, कान, मुंह, लेकिन जिन्दगी और मौत इन्सान के हाथ में नहीं कि किसी को मार दे, या जीवित कर दे।

आपने फरीद जी की कथा सुनी है कि फरीद जी ने काफी रिद्धियां–सिद्धियां हासिल की थीं। जिस समय गांव से बाहर कुंए पर एक बहन पानी भर रही थी तो उसे कहने लगे कि मुझे पानी पिला दो। उस बहन ने कहा कि ठहर जाओ, मुझे पहले अपना काम कर लेने दो, मुझे अपना घड़ा भर लेने दो। फरीद जी कहने लगे कि तू मुझे जानती नहीं! तो उस बहिन ने कहा कि जानती हूँ, तू वही फरीद है जो कहेगा कि चिड़ियों मर जाओ तो चिड़ियां मर जायेंगी और जब कहेगा कि जिन्दा हो जाओ तो जिन्दा हो जायेंगी। पर मैं कोई चिड़िया नहीं हूँ, मैं तो इन्सान हूँ, मैं गुरु वाली हूँ। केवल भक्त में ऐसी बात कहने की ताकत होती है, दिलेरी होती है। साध संगत, फरीद जी को यह बात सुन कर ऐसी लगन लग गयी कि जंगलों में जाकर घोर तपस्या की, उल्टा लटके पर फिर भी मसला हल न हुआ, तो फिर उस बहन के पास गये और उसने जो बताया, उस गुरु के पास गये और जब ये इशारा मिला तब यह ज्ञान हुआ।

साध संगत, सद्गुरु के बिना इस ज्ञान की समझ नहीं आती। जब गुरु हमें बताता है तब ही समझ में आता है। जैसे हम कोई रास्ता भूल जाते हैं तो किसी से पूछना पड़ता है कि हमने फलां स्थान पर जाना है, उस ओर कौन सा रास्ता जाता है। कोई तो हमें रास्ता बता देता है और कोई ऐसा भी मिल जाता है जो हमें मंजिल पर पहुंचा देता है। इसी प्रकार सद्गुरु का कर्म होता है। इसे जानने के लिए तो केवल इशारे की ज़रूरत होती है। जिस प्रकार कोई हमारे पास ही खड़ा हो तो उसे मिलने के लिए कहें कि इसे मिलने के लिए उधर से आना पड़ेगा या इधर से आना पड़ेगा तो ऐसा नहीं है। उसके लिए तो इशारे की जरूरत है, कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार यह प्रभु परमात्मा कहीं दूर नहीं। सद्गुरु की कृपा से इसे जानकर जब तू इसकी भक्ति करेगा तो तेरे अन्दर निर्मलता आ जायेगी, प्यार आ जायेगा, सत्कार आ जायेगा। तेरे अन्दर जो वैर भावना या अपने आपको ऊंचा और दूसरे को नीचा समझने की भावना है अथवा अन्य बुराईयां है, सब दूर हो जायेंगी और इनकी जगह तेरे अन्दर नम्रता भर जायेगी, प्यार भर जायेगा। सद्गुरु की इतनी महानता होती है कि बुराईयों की ओर से तोड़ कर हमें उन बातों के साथ जोड़ते हैं जिनके कारण हम सुखी हो सकते हैं। साध संगत, जब हम किसी के साथ वैर करते हैं, या लड़ाई करते हैं तो हमारा अपना मन भी कितना दुःखी होता है। इसी प्रकार किसी ने एक बात सुनाई कि उसकी किसी के साथ आपस में कोई बात हो गई तो वह कहने लगा – फलां आदमी जब मुझे मिलेगा तो मैं उसे यह कहूंगा, वह कहूंगा, तो आगे से

महात्मा कहने लगे कि वह तो अब तुझे मालूम नहीं कब मिलेगा। दो दिनों बाद, हफ्ते बाद या महीनों बाद मिलेगा। पर तूने तो अपनी नींद आज से ही गंवा ली है।

साध संगत, संत महापुरूष इंसान को हर समय यही प्रेरणा देते हैं कि तू अपने प्रभु से नाता जोड़ और जिस समय भी कोई पेरशानी हो, तू सिमरन किया कर 'तू ही निरंकार, मैं तेरी शरण हां, मैनूं बख्श लो' क्योंकि जब हम सिमरन करते हैं तो सभी कदूरतें, सभी बलायें दूर हो जाती हैं। परेशानियों की जगह चैन मिल जाता है, यह मन जो कल्पना में होता है, उसे ठंडक मिल जाती है और वह शांत हो जाता है। आपने यह तजुर्बे किये होंगे। यदि नहीं तो अब करके देखना। यदि कभी पेरशानी हो, उदासी हो या गुस्सा आ जाये, कोई ऐसी बात हो तो आप सिमरन करो। जब सिमरन करोगे तो उसी समय यह जितने भी आधि–व्याधि के रोग लगे हुए हैं, ये सब दूर हो जायेंगे। सिमरन से सद्गुरु इस मन में डेरा लगा लेते हैं। जब भी सत्संग में बैठो बड़े ध्यान से बैठो और महापुरूषों के बचनों को बड़े ध्यान से सुनो! ध्यान से सुनोगे तो आपको पता लगेगा कि वह क्या कह रहा है। हम जब कभी सिनेमा देखने जाते हैं तो सिनेमा हाल में बैठते ही अगर साथ बैठा हमसे बात करना चाहे तो हम उसे फौरन कह देते हैं कि मुझे डिस्टर्ब न करो वरना यह दृश्य निकल जायेगा। यह जो डायलोग बोल रहे हैं मुझे समझ नहीं आयेंगे, मुझे कहानी का पता ही नहीं चलेगा। ऐसे समय में तो सभी ध्यान के साथ बैठते हैं। यहाँ सत्संग में तो दातार की ही चर्चा होती है, आप को कितनी अच्छी बातें सुनने के लिए मिलती हैं, जो इस जीवन को संवार देती है। इसलिए इन्हें ध्यान से सुना करो। दुनिया में और कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ ये जीवन संवरे। बिगाड़ने वाले तो कई मिल जायेंगे। आप शराबियों के पास बैठ जाओगे तो यदि आप नहीं भी पीते तो पीने लग जाओगे। इसी प्रकार जुआ खेलने वालों का संग करोगे और यदि तुम जुआ खेलने के बारे में नहीं जानते तो उनका संग करके तुम भी जुआ खेलने लग जाओगे। इसी प्रकार जो संतो के पास बैठता है, संतो के साथ व्यवहार करता है, वह भी संत बन जाता है।

साध संगत, दातार से एक दूसरे के लिए ऐसी ही अरदास–प्रार्थना करें कि दातार कृपा करना, सुमति देना कि जैसे भी हैं तेरे चरणों के साथ जुड़े रहें, सत्संग की खैर झोली में डाले रखना क्योंकि यही सुखदायी है। अन्य किन्हीं चीजों में सुख नहीं मिलता। भले ही हम करोड़ों रूपये इकट्ठे कर लें, उससे सुख प्राप्त नहीं होता, दुःख ही होता है। आपने देखा है कि मातायें मन्नतें मांग कर पुत्र लेती हैं और वहीं पुत्र बड़ा होकर जब उनके बालों को पकड़ता है तो फिर मातायें कहती है कि यह ना ही होता

तो अच्छा था। इसलिए इन वस्तुओं में से कभी सुख प्राप्त नहीं हुआ करता। कई लोग कह देते हैं कि जब इनसे सुख प्राप्त नहीं होता तो इनकी आवश्यकता ही क्या है? तो महात्मा समझाते हैं कि यह सभी चीज़े हमारे गुज़रान के लिए हैं। इसी प्रकार एब बार किसी ने गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज को कहा कि इन चीज़ों की क्या आवश्यकता है? तो गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा कि पत्नी घर की इज्जत होती है, ईमान होती है, बेटा निशानी होती है और ये धन गुज़रान होता है। इनसे हमने केवल उतनी देर गुज़ारा करना है जितनी देर दुनिया में रहते हैं। अंत समय कुछ भी साथ नहीं जाता। आप भली प्रकार जानते हैं कि कितनी भी दौलत इकट्ठी कर ली जाये, अंत समय खाली हाथ ही जाना पड़ता है। कहने का भाव इंसान कुछ भी साथ नहीं लेकर जाता।

साध संगत, हमने प्रभु से जो कुछ भी मांगा है, हमें मिला है पर हमने भक्ति नहीं मांगी। आओ, अब भक्ति मांगे, अरदास करें कि दातार प्रभु कृपा करना कि हमें भक्ति के साथ जोड़े रखना, यह सभी चीज़ें तो वैसे ही मिल जानी हैं। यह दुनियावी चीज़ें तो उन्हें भी मिल जाती हैं जो नास्तिक हैं, जो कहते हैं कि प्रभु है ही नहीं। यह चीजें तो डाकुओं और चोरों के पास भी होती हैं, उनकी भी औलाद होती है, जायदादें भी बहुत होती हैं। मुझे किसी ने बताया कि उनके घरों में इतनी कीमती वस्तुएं होती हैं जो करोड़पति लोगों के पास भी नहीं होती।

कहने का भाव, और सभी वस्तुएं तो पापियों के घरों में भी हो जाती हैं पर यह प्रभु भक्ति संतों के हिस्से में ही आती है। आओ साध संगत, प्रार्थना करें कि दातार भक्ति का दान देना। और जितने दान होते हैं, जितनी जायदादें होती हैं वे धीरे-धीरे खर्च हो जाती हैं पर यह भक्ति का दान कभी घटता नहीं। यह भक्ति का खज़ाना ऐसा होता है कि इसे जैसे-जैसे हम खर्च करते हैं, वैसे-वैसे यह बढ़ता जाता है, इसमें कोई कमी नहीं आती।

साध संगत, सद्गुरु ने हमें यही शिक्षा दी है कि हम मिल बैठकर भक्ति करें। ज्यों-ज्यों हम भक्ति करते हैं, दिल को चैन मिलता है, राहत मिलती है। यह तो आप जानते हैं कि संसार में इन्सान को अनेकों दुःख लगे हुए हैं पर महापुरूष ऐसे समय को गुरु के हुक्म अनुसार निभा लेते हैं। ये मानते हैं कि -

सुखु दुखु दुइ दरि कपड़े पहिरहि जाइ मनुख।।

जिस प्रकार हमारे कपड़े मैले हो जाते हैं तो इम धुले हुए कपड़े पहन लेते हैं, इसी प्रकार दुःख–सुख को महापुरूष दातार का ही दिया हुआ मानकर पूर्ण सहनशीलता के साथ निभाते चले जाते हैं।

साध संगत, दातार के चरणों में यही अरदास करें कि दातार कृपा करना, हमें एक दूसरे की कद्र करनी आ जाये। एक दूसरी की मान कर चलने की भावना दिल में प्रकट हो। भले ही वे हमारे घर के सदस्य हैं और भले सद्गुरु ने हमारा यह जो परिवार बनाया है, जिसमें कोई कहीं का रहने वाला है और कोई कहीं का रहने वाला है। अपने देशों से भी दूर बैठे हुए जब हम भक्ति में लगे रहेंगे तो ज़िन्दगी का हर पहलू सुख से बीतेगा। जिस समय हम भक्ति को पहल देते हैं तो मन खुशहाल रहता है और हर समय यही अरदास निकलती है कि दातार कृपा करना, हमें इस तरह सेवा, सिमरन, सत्संग से जोड़ कर रखना ताकि दुनिया के जितने भी उतार–चढ़ाव हैं, वे इस तरह से निकलते जाएं कि इनका असर न हो। यदि हम सत्संग के साथ जुड़े रहेंगे तो इन चीजों के प्रभाव कम पड़ेंगे।

साध संगत, सद्गुरु तो हर वक्त हमारे सिर पर अपना हाथ रखता है ताकि हमारा हर पल सुखदायी हो। दुनिया में वह सुख कहीं नहीं मिलता, वह खुशी कहीं नही मिलती जो हमें सद्गुरु के दरबार में मिली है। हम अपने अन्दर झांक कर देखें कि पहले का हमारा जीवन कैसा था और अब जीवन में कितना परिवर्तन आया है तो हमें अपने आप पता लग जायेगा कि सद्गुरु की शिक्षा ने हममें कितना परिवर्तन किया है। संसार ने तो हमारी ओर नज़रें लगाई हुई हैं। वे जैसे–जैसे हमारे जीवन में निखार देखते हैं तो नज़दीक आकर पूछते हैं कि भाई, तुम्हें कौन सी भक्ति मिली है जिसके आनन्द में, सुख में, तुम रह रहे हो! ते कहना पड़ता है कि सद्गुरु के चरणों में जाने से हमें यह खुशी प्राप्त हुई है। साध संगत के बिना कहीं भी सुख नहीं मिलता, चाहे कितने भी पदार्थ हों। हम साध संगत से दूर होकर तो देखें, मन में काहलगी और बेचैनी ही होगी। यदि संगत में नित्य–प्रति आयेंगे तो यह जितनी भी चीजें हैं, दूर रहेंगी। इसलिए अरदास करें कि दातार ऐसे सज्जनों–मित्रों का मेल होता रहे जिनको मिल कर तेरा नाम याद आये और हम गुरु दर से जुड़े रहें।

साध संगत, भक्त का रंग रूप नहीं देखा जाता, केवल भावना देखी जाती है। भावना भी ऐसी जिसमें संसार के भले की कामना हो। किसी एक जाति, वण्र के लिए नहीं, न छोटे बड़े के लिए, न किसी मज़हब के लिए, न विद्वान के लिए, न अनपढ़ के

लिए, न गरीब–अमीर के लिए, न हिन्दू–सिख–ईसाई के लिए, बल्कि केवल इंसान के भले की कामना की गई हो। महात्मा, भले ही किसी भी युग में आए, उन्होंने इन्सान को बार–बार यही चेतावनी दी है कि ऐ इन्सान, तुझे तो दुनिया में भेजा गया था इस प्रभु परमात्मा की प्राप्ति करने के लिए परन्तु तू यहाँ आकर और ही कामों में उलझ गया है। इसीलिए तुझे कहा गया है कि –

उठ फरीदा सुतेया, दुनिया भालन जा।
मत कोई थीवे बख्शया, तू भी बख्शया जा।

काम तो वास्तव में हमें यह करने के लिए कहा गया था पर हम किन बातों में उलझ गये! हमें तो सद्गुरु से मिलकर निराकार को जानना है।

साध संगत, गुरु और निराकार एक ही होता है। यह हमें समझाने के लिए शरीर धारण करता है, शरीर में प्रवेश करता है। साध संगत, जैसे आप संसार में देखते हैं कि डाक्टर भी शरीर में होता है और मरीज़ भी शरीर में होता है। उस्ताद भी शरीर में होता है और शार्गिद भी शरीर में होता है। जिसे हम कुछ देते हैं, वह भी शरीर में होता है और जिससे कुछ लेते हैं, वह भी शरीर में होता है। इसलिए प्रभु भी शरीर धारण करके आते हैं और जब यह दुनिया में आते हैं तो दुनिया इन्हें चम दृष्टि (शरीर की आंखों) के द्वारा देखती है जिस कारण पहचान नहीं पाती। इन आंखों के द्वारा तो इन्सान को स्वयं की पहचान भी नहीं हो सकती जब तक उसे कोई दूसरा न दिखावे, फिर प्रभु की पहचान अपने आप कैसे हो सकती है? इसे तो हम सद्गुरु की कृपा के द्वारा ही जान सकते हैं और अपना जीवन सफल कर सकते हैं।

19

साध संगत, जिस किसी को कोई वस्तु मिल जाती है, वह फिर दूसरे को प्रेरणा देता है। उसको जिस ढंग से, जिस प्रकार वह वस्तु मिलती है, उसका ही वर्णन करता है। जितनी देर हम उस ढंग को नहीं अपनाते, उतनी देर तक वह वस्तु प्राप्त नहीं कर सकते। इसी प्रकार यह संत महात्मा अब तक हमें यही समझा रहे थे कि हमने इस प्रभु परमात्मा को गुरु की कृपा से ही जाना है। आप भी इसे जान सकते हैं। लेकिन इन्सान इस ओर ध्यान ही नहीं देता। हम यदि बच्चों के साथ प्रभु की बात करके देखें तो वे कहते हैं कि अभी तो हमारे खाने–पीने, खेलने के दिन हैं, बड़े होकर भक्ति कर लेंगे। नौजवानों से बात करें तो वे कहते हैं कि अभी तो हमारे ऐशो–आराम के दिन हैं, भक्ति फिर कर लेंगे। लेकिन जब बुजुर्ग हो जाते हैं, आँखों

की रोशनी भी कम हो जाती है, चश्मा लग जाता है, रास्ता भी पूरी तरह दिखाई नहीं देता, किसी दूसरे का सहारा लेना पड़ता है तो उस समय क्या भक्ति करेंगे। उस समय इन्सान क्या सेवा करेगा जब हाथ भी कांपने शुरू हो जाते हैं, सिर भी कांपना शुरू हो जाता हैं। इसलिए महात्मा कहते हैं कि ऐ इन्सान, तुझे अभी समय है, तू किसी महात्मा की शरण में जाकर अपना जीवन संवार ले। साध संगत, महात्मा की कृपा होती है तभी इस जीवन में ऐसी बातें आती हैं। आप सभी इस समय सत्संग सुन रहे हैं पर आप जानते हें कि वही पूर्ण आनन्द ले रहे हैं जिन्हें यह समझ प्राप्त हुई है। जैसे कहते हैं कि –

गुंगे दीयां रमज़ां गुंगे दी मां ही जाणे।

हम भले ही कितना पास बैठे हों, जब गूंगा इशारे करता है, कन्धे हिलाता है, कपड़े हिलाता है तो हम कुछ नहीं समझ पाते परन्तु गूंगे की माता दौड़ कर आती है और कहती है कि मेरे बेटे को प्यास लगी है, भूख लगी है। यह मां ही समझ सकती है, और किसी को इसकी समझ नहीं आती। इसी प्रकार संसार को संतों की बातें समझ नहीं आती हैं। जब संत–महापुरूष एक दूसरे के चरणों पर नमस्कार करते हैं तो संसार वालों को हैरानी होती है। वैसे पढ़ते वे रोज़ हैं कि –

संत जना का छोहरा तिसु चरणी लागि।
माइआधारी छत्रपति तिन्ह छोडउ तिआगि।।

भाव, संतजनों का छोटा सा बच्चा भी सामने आ जाए तो उसके भी चरण स्पर्श कर लो। राजा महाराजा तो दुनिया में बहुत आए, उन्हें पूजा नहीं जाता केवल इतिहास में ही सुनाया जाता है, पढ़ा जाता है। पर महात्मा चाहे सुदामा जैसे गरीब हुए, चाहे कबीर जैसे अनपढ़ हुए, आज उनके दोहे स्कूलों, कॉलेजों में पढ़ाए जाते हैं। यह सद्गुरु की कृपा के कारण ही हुआ। सद्गुरु के लिए कहा गया है कि –

एक बार जिन तुम्हें समारा, काल फास ते ताहे उभारा।

भाव, सद्गुरु काल की फासी से बचा लेता है वर्ना तो आवागमन का चक्कर चलता ही रहता है। यह रूकता नहीं है। कोई इस भ्रम में न रहे कि मैं इन्सानी शरीर में से निकलूंगा तो मुझे फिर इन्सानी शरीर ही मिलेगा। ऐसा नहीं है। चौरासी लाख योनियां भ्रमण करने के बाद ही यह मानव तन प्राप्त होता है। कहा भी है–

कबीर मानस जनमु दुर्लभु है होई न बारैबार।
जिउ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागहि डार।।

कहने का भाव कि जैसे कोई पका हुआ फल वृक्ष से टूटकर धरती पर गिर जाए तो उसे लाख कोशिश करें, फिर उस वृक्ष पर नहीं लगा सकते। इसी प्रकार यह मनुष्य जन्म जब एक बार हाथ से निकल गया तो फिर न जाने कब बारी आए, हमें यह मानव शरीर मिले या न मिले। फिर यह शरीर तो सदा रहने वाला भी नहीं है। कहा भी है–

राम गइओ रावनु गईओ जा कउ बहु परिवार।
कहु नानक थिरू कछु नहीं सुपने जिउ संसारि।।

भाव दुनिया से राम जी भी चले गये और रावण भी चला गया। दोनों का शरीर आज दिखाई नहीं देता पर नाम तो दोनों का लिया जाता है। जब राम जी का नाम लिया जाता है तो हृदय को कितनी ठंडक मिलती है, शान्ति मिलती है, पर जब रावण का नाम लिया जाता है तो कैसा अनुभव होता है! इसके पीछे कोई दीपक जलाने वाला भी नहीं रहा जबकि रामजी की आज भी जय–जयकार को रही है। क्योंकि जो भी उनके पास आया, उसे वे इस निराकार के साथ जोड़ते गये। साध संगत, दूसरे को वही जोड़ सकता है जो स्वयं जुड़ा हो। जो स्वयं ही न जुड़ा हो, उसने दूसरे को क्या जोड़ना है! जो भूखा होगा वह दूसरे को क्या खिलायेगा? वही खिला सकता है जो स्वयं खा चुका हो। अगर किसी भिखारी से कोई मांगे कि खाना दे दे तो वह कहता है कि मैंने तो खुद ही मांगने के लिए कटोरा पकड़ रखा है तो तुझे क्या दूँ? पर जो स्वयं खाना खा चुका हो वह फौरन कहेगा कि ले भाई तू भी खा क्योंकि पेट तो खाना खाने से ही भरता है। केवल खाना–खाना कहने से पेट नहीं भरता।

साध संगत, गुरु की कृपा द्वारा जब राम मन में बस जाता है तो फिर इन्सान की भावना भी बदल जाती है। फिर केवल जुबान से ही यह शब्द नहीं निकलते कि –

नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे सरबत का भला।

बल्कि यह शब्द इसके कर्म में भी ढल जाते हैं। फिर यह हर एक के भले की कामना करता है। आओ साध संगत, यह अरदास करें, प्रार्थना करें कि दातार, संतों

का संग मिलता रहे क्योंकि संतों का संग मिलता रहेगा तो हमारी बुद्धि शुद्ध रहेगी, यह बुद्धि अच्छी अच्छी बातें सोचेगी। परन्तु यदि किसी साकत का संग मिल गया तो वह स्वयं भी निन्दा चुगली में पड़ा रहेगा और हमें भी निन्दा बखीली में लगाए रखेगा।

साध संगत, दुनिया में जब किसी से इस सत्य की बात करते हैं तो वह यही कहता है कि मैं सत्य ही कह रहा हूँ पर उसका वह सत्य झूठ हो जाता है। जैसे बचपन को सच माना तो वह जवानी में बदल गया, इसलिए बचपन झूठ हो गया। जवानी को सच माना तो वह बुढ़ापे में बदल गयी, इसलिए जवानी झूठ हो गयी। साध संगत, यह जितनी भी बातें हम करते हैं, यह सत्य केवल प्रभु परमात्मा है। जिन्होंने इस सत्य को जाना है, वे तो बहुत भाग्यशाली हैं और जिन्होंने नहीं जाना वे इन संतो से पूछें कि कौन सा परमात्मा है। यह संत कहते हैं कि पहले इसको जान लो फिर इसकी भक्ति शुरू होती है। आम लोग तो कहते हैं कि भक्ति करते चले जाओ, कभी न कभी तो इसका फल प्राप्त हो जाएगा पर संत कहते हैं कि भक्ति के लिए निशाना ज़रूरी है। जैसे शिकारी शिकार करने जाता है तो पहले सामने निशाना देखता है, फिर तीर चलाता है। अगर सामने कोई निशाना न हो तो वह अपना तीर व्यर्थ नहीं गंवाता। इसी प्रकार भक्ति भी बिना निशाने के नहीं होती। पहले सद्गुरु से निशाना प्राप्त कर लें, फिर भक्ति करें, तभी उसका पूर्ण आनन्द प्राप्त हो पायेगा।

20

साध संगत, गुरसिखों को जहां से भी गुण मिलते हैं, वे ग्रहण कर लेते हैं क्योंकि गुरसिख गुणों के ही ग्राहक होते हैं। जैसे पढ़ते हैं कि –

गुणा का होवै वासुला कढि वासु लईजै।।

आज संसार का क्या काम है? किसी में कोई अवगुण मिला नहीं कि उसे ही उछाला जाता है, चाहे उसमें सौ गुण ही क्यों न हों। संत–महात्माओं का कर्म ऐसा नहीं होता। वे सभी के भले की कामना करते हैं। इसका नाम ही गुरसिखी है। गुरसिख उसको कहते हैं जो पल पल गुरु की शिक्षा को अपने दिल में बसा कर रखे। गुरसिख केवल मुंह से ही नहीं बोलते कि 'नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे सरबत का भला' बल्कि उनके रोम रोम में भलाई ही बसी होती है। जो उनके अन्दर होता है वह ही बाहर भी आता है। संत महात्माओं के रोम रोम में भक्ति बसी होती है। वे जहां भी बैठते हैं भक्ति की ही बातें करते हैं, इस मन को धीरज देने वाली बातें

करते हैं क्योंकि यह मन तो ऐसा है कि एक मिनट में ही परेशान हो जाता है। मिनटों में ही क्रोधी हो जाता है, विरोधी हो जाता है। परन्तु जो गुरु वाले होते हैं इस मन को शान्त रखने के लिए यह याद कराते हैं कि –

सांति पाई गुरि सतिगुति पूरे।
सुख उपजे बाजे अनहद तूरे।।

साध संगत, पहले हम बहुत क्रोधी, विरोधी थे परन्तु सद्गुरु ने हमें ऐसी शिक्षा प्रदान की है कि आज हम सभी के लिए भला मांगते हैं। सभी को अपना मानते हैं।

साध संगत, यह दातार प्रभु ही सारे संसार को रोज़ी रोटी देने वाला है, इस बात को स्पष्ट करते हुए एक बार शहनशाह बाबा अवतार सिंह जी ने अपने विचारों में इस प्रकार बताया था।

एक बार हम सभी मिल कर घर से पिकनिक मनाने के लिए चल पड़े और खाना बनाने का सामान भी ले गये परन्तु रोटी बनाने के लिए तवा ले जाना भूल गये। वहाँ जाकर हमने रोटियां बनाने के लिए एक पतला सा चौड़ा पत्थर ढूंढ़ लिया, उसे आग पर रख दिया और उस पर रोटियां पकाने लगे। सारी रोटी पक जाए लेकिन एक तरफ से थोड़ी कच्ची रह जाए। हम सोचने लगे कि इधर से रोटी कच्ची क्यों रह जाती है? यह देखने के लिए इस पत्थर को तोड़ते हैं। उस पत्थर पर पानी डाल कर उसे ठण्डा किया और फिर उसे तोड़ा तो क्या देखा कि उस हिस्से में एक कीड़ा बैठा था। आग में पत्थर तप रहा था। रोटियां सिक रही थी, वह पत्थर चारों और से बंद था फिर भी उस कीड़े को आग का सेक नहीं लगा। भाव दातार जहाँ कहीं भी कोई है, उसे वहीं पर ठीक ठाक रख रहा है।

साधं संगत, हमारी भक्ति उस तरह की नहीं है कि हम खाली होकर किसी पर बोझ बन कर बैठ जाएं। जितने भी आप हैं सभी काम काज करने वाले हैं, कोई नौकरी करता है और कोई व्यापार करता है। वास्तविक भक्ति इस प्रकार ही होती है। संसार हमें कहता है कि ऐसे लोग भक्त किस प्रकार हो सकते हैं, ऐसे भक्ति कैसे हो सकती है? यह तो बस काम–काज छोड़ दो, बाल–बच्चे छोड़ दो तब भक्ति होती है। ऐसा कहते समय वे भूल जाते हैं कि जो काम–काज छोड़ कर कहीं जंगलों में चले जाते हैं वे फिर आपके ही दरवाजे पर आकर कहते हैं कि रोटी का सवाल है, कपड़े का सवाल है। फिर वह भक्ति क्या हुई जो रोटी–कपड़े की ओर ही ध्यान रहा।

साध संगत, महात्माओं ने ऐसा कभी नहीं कहा कि तुम बाल–बच्चे छोड़ दो, काम काज छोड़ दो और दूसरों पर बोझ बन जाओ। उन्होंने तो यही कहा कि–

हथ कार वल दिल यार वल।

और भी कहा गया है कि–

नामा कहै तिलोचना मुख ते रामु सम्हालि।
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि।।

भाव, हमने हाथों से काम करना है, पैरों से चल कर जाना है और अपना ध्यान इस निरंजन के साथ, इस प्रभु के साथ लगाये रखना है। संत महात्मा ही ऐसी प्रेरणा देते हैं और कोई ऐसी शिक्षा नहीं देता। यही शिक्षा हमारे लिए सुखदायी होती है। महात्मा मानते हैं कि –

हरि को नामु सदा सुखदाई।

भाव, हरि का नाम ही सुख देने वाला होता है। वस्तुओं के सुख थोड़ी देर के लिए होते हैं। इन वस्तुओं से हमेशा के लिए आनन्द प्राप्त नहीं होता। यहाँ पर इसी सच्चाई का ज़िक्र हो रहा है। साध संगत, गुरु दर पर ना पापी का सवाल होता है न पुनी का, न पढ़े लिखे का न अनपढ़ का, न गरीब का न अमीर का। यहाँ तो मनुष्य जन्म को विशेषता दी गयी है कि मानव देह ही सबसे उत्तम होती है। जिन्होंने इस नाम धन को प्राप्त नहीं किया उनसे तो पशुओं को ही श्रेष्ठ माना गया है। लिखा भी है
–

पसू मिलहि चगिंआईआ खडु खावहि अमृत देहि।

कहा है कि पशु तो फिर भी अच्छे हैं इन्सान तुझ से। उनका तो गोबर भी हम जलाने में काम लाते हैं, उनका जो चमड़ा होता है वह भी कई काम आता है, उससे कई प्रकार की वस्तुएं बनती है। उनकी हड्डियां भी हमारे काम आ जाती हैं। उनका मांस भी कई जानवर, पक्षी खाकर पेट भर लेते हैं परन्तु इन्सान, तेरा शरीर तो किसी काम भी नहीं आता। पशु तो भूसा खाकर भी अमृत जैसा मीठा दूध देते हैं पर तू छत्तीस पदार्थ खाकर भी क्या देता है? आंखों से भी गन्दगी, नाक से भी गन्दगी, तू

गन्दगी का भरा हुआ पुतला है। तेरी तो विष्ठा भी कहीं पड़ी हो तो वहाँ एक मिनट भी खड़ा नहीं हो सकते, वहाँ से मुंह पर कपड़ा रख कर निकलना पड़ता हैं। इसलिए तुझसे तो पशु ही अच्छे हैं। हां, यदि तू इस मानव देही में आकर इस आत्मा के मूल परमात्मा की पहचान कर लेता है तो फिर तेरी विशेषता बन जाती है। यह विशेषता हमें पूर्ण सद्गुरु की शरण में आने से ही प्राप्त हो सकती है।

साध संगत, भक्त पूर्ण सद्गुरु से इस परम पिता परमात्मा का बोध हासिल करके फिर इसकी भक्ति करते हैं। एक दूसरे के कन्धे के कन्धा मिलाकर, कदम से कदम मिलाकर चलते हैं और सद्गुरु का गुण गाते हुए संसार को सत्य की आवाज देते हैं।

प्रवचनांश

(निरंकारी राजमाता जी द्वारा दिये गये प्रवचनों में से कुछ अंश)

- फूल की खूबसूरती, खुशबू और कोमलता कांटो में रहते हुए भी रहती है। उसके गुणों पर कांटों का कोई असर नहीं पड़ता। ऐसे ही भक्त अपने दैवी गुणों को किसी भी समय नहीं त्यागता।
- अगर कोई कपड़ा इतना अधिक गन्दा हो जाए कि उसका असली रंग भी मैल में छुप जाए, धोबी फिर भी उसको धोने से कभी मना नहीं करता। ऐसे ही आदमी कितना ही गलत क्यों न हो, सद्गुरु उसके मन पर चढ़ी हुई मैल को धो देता है।
- जिस प्रकार वृक्ष न तो अपनी छाया लेता है, न अपनी ठंडक ले पाता है और न वह अपना फल ही खाता है। इसी प्रकार असली जीना वही है जो दूसरों के लिए होता है।
- जीवन यात्रा उस अच्छे यात्री की भांति तय होनी चाहिए जो सबके दुःख–दर्द का ध्यान रखता है, जो दूसरे मुसाफ़िरो के साथ यात्रा प्यार और मिलवर्तन के साथ तय करता है।
- गन्ने के खेत में से केवल निकल जाने से मिठास का पता नहीं चलता, न ही मिठास का अनुभव होता है। गन्ने का स्वाद तब तक नहीं आयेगा, जब तक हम उसका सेवा नहीं करते। ऐसे ही प्रभु का रख खुद (स्वयं) प्राप्त किए बिना इन्सान केवल वाद–विवाद तक ही सीमित रह जाता है।

- बातें तो हम सुबह से लेकर शाम तक बहुत करते हैं कारोबार, रिश्तेदारों, विवाह आदि की, जिनसे आमतौर पर परेशानियाँ ही खड़ी होती हैं। मगर प्रभु चर्चा चाहे हम चौबीस घण्टे ही करते हरें तो भी सभी को आनन्द ही प्राप्त होता है और पेरशानी भी नहीं आती। चेहरे सदा खिले रहते हैं।
- सद्गुरु को न विद्वता, न ही अपार दौलत और न ही उपाधियाँ बांध सकती हैं। केवल भक्त के निश्छल प्यार से ही सद्गुरु बंधा होता है।
- जिस प्रकार कुम्हार कच्ची मिट्टी से जो मर्ज़ी बना सकता है, ऐसे ही बच्चे को जैसी संगत मिलती है, वैसा ही उसे बना देती है।
- मनुष्य का पिछला जीवन चाहे कैसा भी क्यों न हो, साधु की संगत उसके जीवन को महान बना देती है।
- महापुरूष हमेशा भले की ओर आगे बढ़ने की ही सोचते हैं। अगर कोई कहता है कि 'बिल्ली रास्ता काट गई है' तो गुरमुख कहते हैं – 'बिल्ली ने रास्ता साफ कर दिया है।'
- जब–जब, जिस काल में भी गुरु अवतार प्रकट हुए, साथ–साथ उनके भक्तों का नाम भी रोशन हो गया। जेसे रामजी के साथ शबरी और हनुमान जी का, कृष्ण जी के साथ राधा, अर्जुन और बिदुर का, श्री गुरु नानक देव जी के साथ बाला, मरदाना और भाई लालो जी का नाम आता है।
- अग्नि की तरफ और अग्नि डाली जाए तो आग ज्यादा बढ़ेगी। अग्नि को शांत करने के लिए जल की ही आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार क्रोधी को नम्रता के साथ ही शांत किया जा सकता है।
- अपार दौलत प्राप्त हो जाने पर भी भक्त को वह खुशी नहीं मिलती जो सद्गुरु से मिलकर प्राप्त होती है।
- हर समय ऐसे ही संतों का साथ (संग) करना चाहिए जो सद्गुरु और निरंकार का ध्यान दिलायें।
- सच्चाई हर युग में कायम रहती है। भक्तों ने जगह–जगह जाकर सच्चाई ही बांटी, परन्तु इसे वह ही बांट सकता है जो आप सच्चाई को जानता है।
- जिस प्रकार चोर, चोरी करते समय अंधेरे का ध्यान जरूर रखता है। वह तब तक इन्तज़ार करता है जब तक अंधेरा नहीं हो जाता। ऐसी ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार भी अज्ञानता के अंधेरे में ही इन्सान पर असर कर सकते हैं।

- जब मनुष्य की आत्मा परमपिता परमात्मा के साथ जुड़ जाती है, फिर उसे प्रत्येक के अन्दर राम ही दिखाई देता है, तब ही प्रत्येक मनुष्य के लिए भले की कामना हो सकती है।
- एक समय पर एक बर्तन के अन्दर एक ही वस्तु आ सकती है। इसी प्रकार साधु से शिक्षा तब ही प्राप्त हो सकती है जब हम अपने मन के अन्दर पड़े विचारों को निकाल बाहर करें।
- साध संगत के साथ मिलकर निरंकार का सुमिरन हो जाता है, जिससे दुखों की भावना का अन्त हो जाता है।
- आज के समय में जिस भी वस्तु–पदार्थ में हाथ डालते हैं, वह शुद्ध नहीं मिलती, मिलावट ही मिलावट है। परन्तु भक्ति के अन्दर मिलावट नहीं चल सकती। हम अन्दर और बाहर से एक जो जाएं तब ही आनन्द प्राप्त होगा।
- सद्गुरु अपनी शरण में आये एक प्रत्येक प्राणी को प्यार देता है। गुरु से प्यार पाने और उस प्यार को बनाए रखने के लिए अपना आप मिटाना पड़ता है।
- तन की सेवा से तन आरोग्य रहता है और मन से सेवा करने से मन के अन्दर विशालता आ जाती है।
- भक्त चाहे भूतकाल में हुए हों या वर्तमान में, उनका केवल नाम लेने से हम भक्त नहीं बन सकते, उनकी भांति भक्ति का रंग प्राप्त करके ही हम उस रस के भागीदार बन सकते हैं।
- महापुरूषों के खुशी से खिले हुए चेहरों को देखकर यह ज्ञात हो जाता है कि ये गुरु के सिख हैं।
- हर स्थान पर गुरु का यश गाने वाले रहते हैं। अतः जब–जब, जहाँ–जहाँ, सद्गुरु की बख्शिश (कृपा) का वर्णन करते हैं, मन में ठंडक–सी महसूस होती है।
- हमने सदा पक्कों का ही संग करना है, कच्चों का नहीं क्योंकि जो स्वयं ही डूब जाते हैं वे दूसरों को कैसे पार उतारेंगे ?
- प्रत्येक काल में सद्गुरु पाप, पुण्य और बाहरी दशा को देखे बिना भक्तों को अपनी शरण में ले लेता है।
- हर युग में गुरुओं–पीरों ने जहां एक राम और रहीम को जानकारी देकर जीवन के असली लक्ष्य की प्राप्ति करवाई वहां साथ ही इस दुनियां में रहने के सुन्दर ढंग भी सिखाए।

- महात्मा तंगदिली को दूर करके विशालता ही देते हैं।
- 'इन्सान बनो' कहने का भाव यही है कि झगड़ा करना, आपस में उलझना, इंसानों का कर्म नहीं है, पशुओं का काम है। इन्सान की पहचान इन्सानियत ही है।
- संत, हमेशा अपनी कमज़ोरियों की तरफ नज़र डालते हैं, इसीलिए उनका जीवन तबदील हो जाता है।
- वैसे तो फूलों की सुन्दरता प्रत्येक को अच्छी लगती है पर जब कोई अलग-अलग पड़े फूलों को इकट्ठा करके एक हार अथवा गुलदस्ते का रूप बना देता है, तब उनकी सुन्दरता को चार-चांद लग जाते हैं। सद्गुरु भी दैवी गुणों वाले भक्तों को साध संगत का रूप देकर और निखार देता है।
- हर युग में भक्तों के अमली-जीवन जब शब्दों का रूप धारण करते हैं, तो वह धर्म शास्त्र, धर्म ग्रन्थ बन जाते हैं।
- अगर नेत्र सच्चे नहीं होंगे तो फिर न दृष्टि सच्ची होगी और न ही दृश्य में सच्चाई होगी।
- आत्मा का न जन्म होता है, न मृत्यु। एक तन को छोड़कर दूसरे को धारण करने का ही नाम है, जन्म और मृत्यु।
- रास्ता दिखाने वाले संसार में लाखों ही मिल जाते हैं, परन्तु मंजिल पर पहुँचाने वाला केवल सद्गुरु ही होता है। सद्गुरु मिल जाये तो मुक्ति का अनुभव जीते जी प्राप्त हो जाता है।
- जिसका जीवन सुख से, शांति से नहीं बीता, उसकी मृत्यु शांति से हो कैसे सकती है ?
- अहंकार के वश में मनुष्य कभी-कभी अपने आप को भगवान से भी श्रेष्ठ समझने लगता है। यही इसकी गिरावट और दुखों का मुख्य कारण है।
- बाज़ार अनेकों वस्तुओं से भरा पड़ा होता है लेकिन हमें जो चीज़ खरीदनी होती है, उसका निश्चय हम घर से करके चलते हैं और हमारी निगाह उसी वस्तु पर ही स्थिर हो जाती है। ऐसे ही साध संगत में भी हम प्रभु-भक्ति के लिए ही जाते हैं।
- मनुष्य माता के गर्भ में उलटा लटका होता है। इसका सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं। माता के गर्भ से आजाद होकर इसका सिर ऊपर और पैर नीचे हो जाते हैं। भाव, यह अपने आपको सियाना और समझदार समझने लग पड़ता है, शायद यही इसकी मुसीबतों का कारण है।

- जिस प्रकार घर में अगर सारे बच्चे मिलजुल कर बैठें, एक दूसरे का आदर–सत्कार करें, एक दूसरे पर अपने आपको न्यौछावर करें, दूसरों को पहल दें, तारे माता–पिता कितने खुश होते हैं। इसी प्रकार साध संगत भी गुरु का परिवार होता है, और ऐसा प्यार और सत्कार हमें सद्गुरु की आशीषों का भागीदार बना देता है।
- भक्ति मार्ग में विश्वास का होना बहुत जरूरी है। शहनशाह बाबा अवतार सिंह जी कहते थे कि आसमान से कोई फरिश्ता भी उतरकर सामने आ जाये, तब भी अपने गुरु से उत्तम किसी को नहीं मानना।
- यूं तो दिन रात हर तरफ़ ही भक्ति हो रही है, लेकिन प्रभु के दर पर वही भक्ति स्वीकार होगी, जिसमें सद्गुरु शामिल होगा।
- नशे अनेकों प्रकार के हैं। दोस्ती, दौलत, अफीम, तम्बाकू, शराब आदि यह सारे नशे पेरशानी का कारण बनते हैं, परन्तु प्रभु के नाम का नशा अगर एक बार चढ़ जाये तो फिर उतरता नहीं, और यह नशा सदा ही सुखदायक होता है।
- हम चाहे कितना हल जोत लें, मेहनत करें, धूप और तूफान की परवाह किये बगैर दिन–रात एक कर दें, परन्तु अगर हम धरती में बीज नहीं डालते तो फसल की आशा नहीं कर सकते। हमारी भक्ति मुबारक है, पर ज्ञान का बीज बोए बिना भक्ति प्रफुल्लित नहीं हो सकती।
- अगर हम किसी पर गन्दगी फेंकना चाहें तो वह गन्दगी पहले हमारे अपने हाथों को ही लगती है, इसी प्रकार अगर हम किसी के ऊपर इत्र या फूलों की वर्षा करें, तब भी हमारे हाथों को पहले खुशबु प्राप्त होगी। इसलिए हमें निन्दा, चुगली आदि अवगुणों को भूलकर प्यार, सत्कार, नम्रता और गुणों की खुशबू ही बांटनी है।
- अहंकार में भरा हुआ मन मित्र को शत्रु समझने लग पड़ता है। अहंकार चाहे इल्म का हो या ताकत का, हमें सच्चाई से कोसों दूर ले जाता है। ध्यान रहे कि ये ताकतें सदा रहने वाली नहीं है।
- जो हमें दिखना चाहिए, वो ही हम देखा करें। जो हमें सुनना चाहिए, वो ही हम सुनें क्योंकि मन ज्ञानेन्द्रियों के पीछे ही दौड़ता है। इसलिए देखना हो तो संतों को, सद्गुरु को ही देखें, सुनना हो तो गुरु यश, हरि यश ही सुनें।
- हृदय में अहंकार बस सकता है या निरंकार। इसलिए भक्त सदा चेतन (सचेत) रहता हुआ, अहंकार को, चाहे वह कितना ही सुक्ष्म क्यों न हो, मन में नहीं बसने देता, ताकि हृदय में निरंकार बसा रहे।

- बच्चा जब छोटा होता है तो माता–पिता उसकी प्रत्येक आवश्यकता का ध्यान रखते हैं। खाने–पीने, मौसम की तबदीली अनुसार वस्त्रों, स्कूल की किताबों इत्यादि के लिए बच्चे को ज़रा भी सोचना नहीं पड़ता, इसी तरह प्रभु के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित भक्त की हरेक जरूरत को प्रभु स्वयं पूरी कर देता है।
- माया प्रभु की परछाई है। जब भक्त प्रभु को ही पकड़ लेते हैं तो फिर माया दासी बन जाती है लेकिन जो माया के दीवाने होते हैं, इनके लिए ये सर्पनी बन जाती है जो अपने बच्चे स्वयं ही खा जाती है।
- जीवन में विशालता हो तो बड़ी से बड़ी बात भी विचलित नहीं कर सकती। जिस तरह समुद्र में गंदगी के दरिया भी गिर जायें तो उसे कोई अन्तर नहीं पड़ता।
- पूरे शहर का गन्दा पानी अगर गंगा में गिर जाये तो गंगा उसे अपना रूप बना लेती है। इसी तरह साध संगत में भी हर तरह का इंसान आकर संत मति प्राप्त करता है।
- हम देखते हैं कि होटलों, स्कूलों, बसों, अस्पतालों, कोट–कचहरियों में हिन्दू सिख अर्थात् जात–पात का कोई भेद नहीं होता, लेकिन जब धर्म का नाम आता है तो अलग अलग स्थान चुने जाते हैं। भक्त इन भ्रम–भुलेखों को दूर कर सभी को एकता के सूत्र में बांधते हैं।
- जुड़ी हुई माला को बिखेरने वालों की कमी नहीं होती लेकिन बिखरे हुए मोतियों को जोड़ने वाला तो कोई–कोई ही होता है। सद्गुरु उन पर ही खुश होते हैं जो जोड़ने का काम करते हैं।
- जैसे हमें मौसम की तबदीली का पता होता है, इसलिए हम उस अनुसार तैयार रहते हैं। ऐसे ही दुःख–सुख, संयोग–वियोग, दिन–रात, मान–अपमान और जीवन–मृत्यु भी प्रत्येक के जीवन में आते हैं। इसलिए भक्त भी सद्गुरु की कृपा से इनके लिए तैयार रहते हैं।
- जैसे पानी में पानी, दूध में दूध और तेल में तेल मिला दिया जाये तो कोई भेद–भाव नहीं रहता, ऐसे ही इस आत्मा का अपने मूल परमात्मा के साथ मिलाप हो जाने के उपरान्त भिन्नता समाप्त हो जाती है।
- मनुष्यता ही मनुष्य की जाति है।
- मानव मन हर समय अनेक दिशाओं की तरफ उड़ान भरता रहता है। भक्ति के बिना इसे स्थिरता नहीं प्राप्त हो सकती। जब यह गुरु के द्वारा बताये मार्ग

सेवा, सुमिरन और सत्संग की तरफ लग जाता है, तब ही सकून प्राप्त करता है।

- जब भी भक्त ईर्ष्या, नफ़रत या लोभ की बात सुनता है, तब अने आपको भारी बोझ के नीचे दबा हुआ महसूस करता है। लेकिन जब सद्गुरु से भक्ति प्राप्त करता है तो उसी समय इसक सभी बोझ उतर जाते हैं।
- हमारा सच्चा मित्र वही होता है जो हमें राम से मिला दे। इसलिए भक्ति की पहली सीढ़ी ऐसे मित्र की खोज होती है।
- अंध विश्वास एक ऐसा कुंआ है जिसके किनारे नहीं होते। इसमें गिरा हुआ इंसान तब तक निकल नहीं सकता, जब तक कोई दूसरा उसको सहारा न दे। ऐसे ही अज्ञानता के अंधेरे से सिर्फ (केवल) सद्गुरु ही रोशनी देकर निकाल सकता है।
- इंसान के कर्म (आचरण) से ही पता चलता है कि उसकी वृति पशुओं जैसी है या इंसानों जैसी।
- आज दशे तो आजाद है लेकिन दिल और भी संकीर्ण हो गये हैं। हमें छोटे–छोटे दायरों से मुक्ति प्राप्त करनी है।
- सांचे में से निकली हर वस्तु चाहे वह छोटी हो चाहे बड़ी, सदैव खूबसूरत ही लगेगी। ऐसी ही गुरसिख का जीवन जब गुरमत के सांचे में ढल जाता है तो उसमें खूबसूरती आ जाती है।
- तन, मन, धन ही अहंकार का मूल है। इसलिए सद्गुरु सबसे पहले तीनों को प्रभु के समर्पण करने के लिए कहता है। फलस्वरूप गुरसिख अहंकार रहित होकर नम्रता में चलता जाता है।
- यह ठीक है कि आंखे सारे जगत को देखने के लिए समर्थ होती हैं लेकिन काजल देखने के लिए शीशे की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे ही अपने निज स्वरूप को जानने के लिए सद्गुरु की जरूरत पड़ती है।
- अगर हम किसी का सत्कार नहीं कर सकते तो फिर निरादर करने का भी कोई हक नहीं, इस तरह छोटे–बड़े सभी को ध्यान देना चाहिए। जब भी कहीं थोड़ी बहुत कमी आती है तो वह हमें भक्ति मार्ग से पीछे कर देती है।
- रूका हुआ पानी जल्दी ही गन्दा हो जाता है लेकिन चलता हुआ पानी निर्मल रहता है। इसलिए मन को संतों के बवचारों से चलता हुआ रखो ताकि इसमें किसी भी किस्म की बुरी भावना प्रवेश न हो।

- सद्गुरु का हृदय इतना विशाल होता है कि वह किसी के भी कर्म अथवा अवगुण नहीं देखता, हरेक को ही अपना बना लेता है। गुरसिख का हृदय भी ऐसा ही होना चाहिए जिसमें हरेक के लिए अपनापन हो और दूसरों का दुःख-सुख भी जिसे अपना ही लगे।
- भारतीय संस्कृति के अनुसार बच्ची (लड़की) की जब शादी होती है तो लड़की को अपने मायके की सारी आदतों, रस्मों-रिवाज़ों को भूलकर ससुराल के तौर-तरीके अपनाने पड़ते हैं, तब ही उसे गृहस्थ के मार्ग में सफलता मिलती है। ऐसे ही गुरसिख को साध संगत के साथ मिलकर सभी का सत्कार करना होता है और ब्रह्मज्ञानी वाला आचरण बनाना होता है।
- गुरु की बड़ाई गुरु के वचनों को मानने में है।
- सद्गुरु कभी भी अपने नाम का सुमिरन नहीं देता बल्कि एक परम सत्य निरंकार का सुमिरन करने की प्रेरणा देता है।
- सत्संग में कभी भी कोई ऐसी बात नहीं बतायी जाती जो हमें गिरावट की तरफ़ ले जाए।
- जिस के अपने मन में कमियां होती हैं वही औरों की कमियां देखता है। सद्गुरु स्वयं सम्पूर्ण होता है, इसलिए वह किसी की कमियों को जानते हुए भी उसे ठुकराता नहीं, उनमें सुधार करता है।
- भक्तों के हृदय विशाल होते हैं। जो तंग दिल होता है, समझो, उसके पास भक्ति नहीं है।
- गुरसिखी भय के बिना नहीं निभ सकती। ऐसा न हो कि सद्गरु जब शरीर रूप धारण कर सामने प्रकट हो तब ही उसका डर (भय) रखें बल्कि इसका अहसास तो हमें हर समय ही रहना चाहिए, क्योंकि सद्गुरु तो सदा ही हमारे अंग-संग रहता है।
- सद्गुरु सब कुछ सहन करता है परन्तु अपने भक्त का अपमान कदापि नहीं बर्दाश्त करता। सद्गुरु बाबा गुरबचन सिंह जी अपने बच्चों को भी यही शिक्षा देते थे कि किसी ड्राइवर या सेवादार को कभी नौकर नहीं समझना बल्कि गुरु-भाई समझ कर, सत्कार करना, सम्मान देना।
- गुरसिख मज़ाक में भी कभी हल्का शब्द नहीं बोलते। वे अपने हरेक वाक्य को सोच समझकर बोलते हैं।

- जब कोई इंसान किसी दूसरे पर क्रोध करता है तब वह अपने आप को ही जलाता है। ऐसा करके वह अपनी नींद को भी भागता है और अपने शरीर में भी खराबी डाल लेता है।
- जब हम दूसरों का सत्कार करते हैं तो दरअसल वह आपना ही सत्कार होता है।
- इंसान का असली धर्म मिल-जुल कर रहना, एक दूसरे का दुःख-दर्द बांटना है। जब हम मिलकर एक आवाज़ के साथ इकट्ठे होकर भार को उठायें तब बड़े से बड़ा वज़न भी उठाया जा सकता है।
- गुरसिख का सुन्दर जीवन सद्गुरु का नाम भी रोशन कर देता है।
- सब्र, संतोष, प्यार में जीना ही असली जीना है।
- जिस प्रकार रेल अपनी पटरी पर चलती है, ठीक उसी प्रकार भक्त अपने गुरु के आदेशों पर चलता है।
- संतों का कर्म यही होता हे कि वे जो दुखी होता है, उसे सुखी कर देते हैं, जो रोता है, उसे हँसा देते हैं, जो ज़ख्मी होता है, उसके ज़ख्मों पर मरहम लगा देते हैं। संत किसी को ज़ख्म नहीं देते। कभी हँसते हुओं को रूलाते नहीं, किसी संभले हुए को गिराते नहीं बल्कि गिरते हुओ को उठाते हैं।
- महात्मा संसार की सभी बातों को सहन करते हुए परोपकार के काम में लगे रहते हैं।
- एक तरफ से अग्नि के तीर चलते हों और दूसरी तरफ से पानी के तीर आते हों तो वे उन्हें बुझा देते हैं। यही संतों का कर्म होता है कि कितने भी ज़हरीले शब्द हों, अग्नि से भरे हुए हों, वे अपनी मिठास और प्यार से उन्हें बुझा देते हैं।
- सदगुरु सबके दिलों को शीतलता देने के लिए आते हैं। दिलों में शीतलता आती है तो अभी एक दूसरे का सत्कार कर पाते हैं। वैर, विरोध, नफ़रत आदि से जलते हुए दिलों को शीतलता की अधिक आवश्यकता है। सर्द मौसम के बावजूद वैर-विरोध से जलते हृदय ठण्डे नहीं होते। यह तो ब्रह्मज्ञान से ही ठण्डे होते हैं।
- उस्ताद किन्हीं वस्त्रों का नाम नहीं है। जिस प्रकार अध्यापक टाई-पैण्ट वाला भी हो सकता है, धोती-टोपी वाला भी हो सकता है और सलवार-कमीज़ वाला भी हो सकता है। इसी प्रकार सद्गुरु भी ज्ञान का नाम है। किसी जाति, रंग या नस्ल का नाम सद्गुरु नहीं होता।

- जब तक पानी नदी में होता है केवल पानी होता है। जब पानी को हम अपने-अपने घड़ों में भर लेते हैं तो उनमें होई हिन्दू का घड़ा, तो कोई मुसलमान का घड़ा हो जाता है और इसी प्रकार उनमें रखा पानी हिन्दू व मुसलमान का पानी बन जाता है। महात्मा जब भी अवतरित होते हैं, सभी वर्णों को एक कर देते हैं।
- भक्ति में कोई मिलावट नहीं चलती, शुद्ध भक्ति ही सद्गुरु व प्रभु को स्वीकार होती है।
- संत की पूजा, संत की सेवा ही भक्ति की पहली सीढ़ी है।
- जिस प्रकार दर्पण के आगे चाहे जो भी आ जाए, दर्पण उसका चेहरा सामने रख देता है, कोई लिहाज़ नहीं करता। उसी प्राकर भक्ति में भी हम जैसी भावना लेकर आते हैं, प्रभु वैसे ही मिलते हैं।
- सेवादल किसी फौज़ या जत्थेबन्दी का नाम नहीं है बल्कि यह तो मानव सेवा का नाम है। सेवादल के सदस्य मानव सेवा के हर कार्य में आगे रहते हैं। यह सद्गुरु की शिक्षा को अपने आचरण में लाकर रब्बी प्रचार के साधन बनते हैं।
- किसी को गिराना आसान है परन्तु उठाना कठिन है।
- आध्यात्मिक ज्ञान से हमारे दुःख दूर हो जाते हैं। अज्ञानी भी गुरु के निकट आकर ज्ञानी बन जाते हैं परन्तु गुरु के पास मोह, अहंकार आदि सभी बुराइयां छोड़कर आना पड़ता है।
- अगर नल खुला है उसके नीचे बाल्टी सीधी हो तभी उसमें पानी भरेगा। बाल्टी अगर उल्टी हो तो नल खुला होने के बावजूद भी पानी हासिल नहीं हो सकता। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए मन का रूख विनम्रता, सच्चाई व प्रेम की तरफ करना पड़ता है।
- जो सद्गुरु पर अपना विश्वास पक्का करते हैं, उनके कठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं। माया, पति-पनी, बच्चे, रिश्तेदार और दोस्त के रूप में सामने आ जाती है पर अगर मन सद्गुरु को समर्पित हो तो वह अडोल रहता है।
- शंकाओं से घिरा मन कभी दण्डवत प्रणाम करता है तो कभी हाथ जोड़ने को भी तैयार नहीं होता जबकि गुरमत के सांचे में ढली भक्ति मार्यादा में रहती है और सुन्दरता के शिख को छुती है।

- गुरसिख का विश्वास अपने सद्गुरु पर दृढ़ होता है और इस विश्वास से ही भवसागर से पार उतारा होता है। अपने प्रयत्नों के द्वारा चाहे सारी उम्र लगे रहो, कुछ नहीं बन सकता।
- जैसे अन्धेरे में रस्सी भी सांप लगती है वैसे ही इन्सान सारी उम्र भुलेखों में ही उलझा रहता है। सद्गुरु ज्ञान रूपी रोशनी देकर अन्धेरा दूर करता है।
- अज्ञानता में पड़कर इंसान मात्र मंत्र–जाप को प्रभु प्राप्ति समझकर चौरासी लाख योनियों की मार खाता रहता है। जब इसे सद्गुरु मिलते हैं तभी इस मार से छुटकारा मिलता है। भौतिकवाद के इस युग में आध्यात्मि शक्ति ही सुख–चैन दे सकती है।
- प्यार तथा नम्रता की भाषा सिर्फ संतों को ही दान में मिलती है। संत ज्यों–ज्यों इसी मीठी भाषा को जीवन में अमली तौर पर अपनाते हैं, त्यों–त्यों शिखरों को छूते हैं।
- अच्छे बोल ही हमारा सत्कार करवा सकते हैं जबकि कच्चे बोल सदा ही निरादर का कारण बनते हैं।
- भक्ति मन से होती है। इन्सान वास्तव में कहीं बैठा होता है, परन्तु मन अन्य कहीं भटकता है तथा बन्दे को नाच नचाता रहता है। वास्तव में मन गुरु के हवाले करके उनके आदेशानुसार जीने का नाम ही भक्ति है।
- सूरज की तरफ मुंह रखने से परछाई पीछे–पीछे भागती है, सूरज की तरफ पीठ हो तो परछाई आगे भागती है। गुरसिख गुरु की तरफ मुंह रखते हैं जिससे माया स्वयं उनके पीछे रहती है। उन्हें इसकी कोई कमी नहीं रहती।
- गुरसिख एक फूल की भांति कोमलता, सन्दरता तथा खूशबू के गुणों से परिपूर्ण होते हैं।
- ज्ञान किसी मंत्र का नाम नहीं, जानकारी का नाम है। चिकित्सक शरीरों के रोग दूर करते हैं, जबकि संत महात्मा मन का इलाज़ करते हैं।
- खरबूजे की ऊपरी सतह पर लाईने होती हैं, जबकि भीतर से वह एक ही होता है। इसी प्रकार संत भी ऊपर से अनेक लगते हैं जबकि भीतर से एक ही होत हैं। इसके विपरीत संतरा ऊपर से देखने में एक होता है जबकि छिलका हटाने पर उसमें अनेक फांके दिखाई देती हैं। मनमुखों की स्थिति भी ऐसी ही होती है।
- कामज़ के फूलों का गुलदस्ता कितना ही खूबसूरत हो, उसमें खूशबू नहीं हो सकती जबकि असली फूल चाहे एक ही हो, तो भी सारा वातावरण सुगन्ध से

भर देता है। इसी प्रकार देखने वालों को सद्गुरु एक साधारण गृहस्थी प्रतीत होता है, परन्तु इससे ब्रह्मज्ञान पाकर हज़ारों व्यक्ति झूम रहे हैं।

- गुरु के दर पर ऊंच–नीच, गरीब–अमीर, पापी–धर्मात्म, पढ़े–अनपढ़ को कोई भेदभाव नहीं होता। गुरु की शरण में तो कोई कैसा भी क्यों न आये, वह उसके सारे गुनाहों को क्षमा कर आत्मा को परमात्मा से मिला देता है।
- जब भगवान की कोई जाति नहीं होती तो उसके द्वारा बनाए इन्सान की कोई जाति कैसे हो सकती है? निश्चय ही इन्सान की मूल रूप में कोई जाति नहीं होती लेकिन बाद में गलत शिक्षाओं से यह ऐसा हो जाता है। जैसे हम देखते हैं कि बचपन में बच्चे नफरत, वैर की भावना को नहीं समझते, परन्तु हम उन्हें बाद में सिखा देते हैं। बाहरी वातावरण, अपनी नासमझी और फिरकापरस्ती के कारण हम उन्हें गलत बना देते हैं।
- जिस प्रकार बच्चा अन्जान होता है तो मां–बाप उसका हर काम करते हैं और जब बच्चा समझदार हो जाये तो मां–बाप उतना ध्यान नहीं देते। इसी तरह जब हम परमात्मा के प्रति अर्पण होते हैं तो प्रभु हमारी हर कामना खुद पूरी करता है और हमारी चिन्ता खत्म हो जाती है। परन्तु जब हमारे अंदर चतुराई और अपनी समझ का अहम् भाव आ जाता है तो भगवान भी कहकर टाल देता है कि यह खुद ही होशियार है, इसलिए इसे सब कुछ खुद करने दो।
- जैसे जैसे हम दूसरों के लिए सुख मांगेंगे, हमारे लिए सुखों के अम्बार लग जाएंगे। जो बीज हम धरती पर बोएंगे, हमें वहीं काटना पड़ेगा। अगर हम चने बीजेंगे तो चने ही काटेंगे, सब्जी बीजेंगे तो सब्जी और फल बीजेंगे तो फल काटेंगे। इसी प्रकार अगर हम किसी से वैर–विरोध करेंगे तो वह भी हमारे अपने सामने ही आएगा। इसलिए हमने सभी के लिए भला ही मांगना है।
- जैसे पानी, शक्कर, अग्नि, आटा और घी के मिलने से ही हलवा बनता है, इसी तरह सेवा सिमरन और सत्संग से ही हमारा जीवन बनता है।
- स्मरण रहे कि संसार में जो वैर–नफ़रत, ईर्ष्या और विरोध फैला है उसे हमने प्यार, सत्कार और नम्रता से खत्म करना है। हमें सबसे नम्रता से पेश आना है और सब की चरण धूलि ही बनना है।
- जिस प्रकार शरीर मैला होने पर पानी की संगति से हम उसे साफ कर लते हैं, उसी प्रकार इस मन पर लगी माया रूपी मैल सत्संग में आने से धुलती है।
- भक्त पहले इस सर्वव्यापी परमात्मा की पहचान करते हैं और फिर हसे अंग–संग देखते हुए अपनी ज़िन्दगी इसके सहारे, सुख, चैन और अमन से

व्यतीत करते हैं। वे भगवान के बनाए, इंसानों का एक समान आदर व सत्कार करते हैं।

- संत–महापुरूष इस एक के ही गुण गाते हैं और इसी का दीदार करते हैं। ये दुनिया की तरह बंधनों में नहीं पड़ते। उन्हें सुबह उठते ही कोई कुत्ता, बिल्ली अथवा कोई मनहूस इंसान दिखाई नहीं देता जिससे इनका सारा दिन खराब हो जाये। बल्कि यह तो सुबह आंखें खुलते ही पहले सर्वव्यापी भगवान के दर्शन करते हैं और इसका धन्यवाद करते हैं।
- जब किसी ने सत्य की आवाज़ दी, दुनिया वालों ने उसे दबाने की कोशिश की। परन्तु जिन संतों के पास सच्चाई होती है उन्हें घबराने की जरूरत नहीं होती।
- दुनिया वाले संतों को कितना ही सताएं, संत अपनी चाल को नहीं छोड़ा करते। यही गुरु की सिखलाई है, यही गुरु का पाठ है, यही गुरु की पूजा है और यही गुरु को श्रद्धांजलि है।